नवनाटक-निकुंज

[सात सुंदर एकांकी नाटक]

To be considered and approved as a supplementary reader in Hindi on the Art of Plays for IX & X

संशोधक

पं० चन्द्रमौलि शुक्ल

नवनाटक-निकुंज

[सात सुंदर एकांकी नाटक]

सम्पादक

पं० चन्द्रमौलि शुक्ल

प्रकाशक

सरस्वती मंदिर

जतनबर, बनारस ।

द्वितीय बार] १९४९ [मूल्य १।)

प्रस्तावना

हिंदी-साहित्य में एकांकी नाटकों की रचना दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है, कुछ तो युग की अनिवार्यता के कारण और कुछ पाश्चात्य-साहित्य के प्रभाव-वश। जिस प्रकार उपन्यास के रहते हुए भी आख्यायिका की अनिवार्यता में कोई संदेह नहीं रह गया है, उसी प्रकार अनेकांकी नाटक के रहते हुए भी अब एकांकी नाटक की अनिवार्यता में भी कोई संदेह नहीं रह गया है। एकांकी नाटक का अनेकांकी नाटक से लगभग वही संबंध है, जो आख्यायिका का उपन्यास से। इनमें केवल कथा-वस्तु (प्लाट) के विस्तार का ही अंतर नहीं है। दोनों एकदम विभिन्न जातियों की रचनाएँ हैं। एक में जीवन के किसी विशेष अंग की झलक रहती है, चरित्र के किसी पहलू का रेखा-चित्र, कोई एक घटना का क्रमिक विकास; दूसरे में जीवन की जटिलता, चरित्र की गुत्थियाँ, घटना-चक्र। एकांकी नाटक की अपनी

अलग महत्ता है। एकांकी नाटकों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने अपने सुलझे हुए विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—"एकांकी नाटक में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता होती है। उसमें एक ही घटना होती है, और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (Climax) तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द प्राण की तरह आवश्यक रहते हैं। पात्र चार या पाँच ही होते हैं, जिनका संबंध नाटक की घटना से संपूर्णतया संबद्ध रहता है। वहाँ केवल मनोरंजन के लिए अनावश्यक पात्र की गुंजाइश नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की रूप-रेखा पत्थर पर खिंची हुई रेखा की भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं। घटना के प्रत्येक पात्र का संबंध मनुष्य-शरीर के हाथ-पैरों के समान है, जिसमें अनुपात-विशेष से रचना होकर सौंदर्य की सृष्टि होती है। कथा-वस्तु भी स्पष्ट और कौतूहल से युक्त रहती है, और उसमें वर्णनात्मक की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है। × × × जिस तरह कहानी उपन्यास से भिन्न है, उसी प्रकार एकांकी नाटक साधारण नाटक से।"

एकांकी नाटक का लक्ष्य थोड़े से समय में दर्शकों को, जीवन के किसी एक पहलू पर मार्मिक प्रभाव डाल, जीवन की

विषम समस्याओं का अनुमान करा देना रहता है। एकांकी नाटक का अर्थ है वह अभिनययोग्य दृश्य-काव्य जो एक ही अंक में समाप्त हो जाय। यह एक अंक एक ही दृश्य में भी समाप्त हो सकता है और एक से अधिक दृश्यों में भी; उसके लिए साहित्य-शास्त्रियों ने कोई बंधन नहीं रखा है। परन्तु जो एकांकी नाटक परदा खुलते ही प्रारंभ होकर परदा गिरने पर समाप्त हो जाते हैं—अर्थात् बीच में दृश्य के परदे बदलने की जरूरत नहीं पड़ती, वे अधिक सफल और प्रभावपूर्ण होते हैं। नाटककार का लक्ष्य तो एक घटना को क्रमिक विकास के द्वारा उसे चरम सीमा तक पहुँचा देना रहता है। घटना के क्रमिक विकास ही की यह सीमा ही मेरी दृष्टि में एक अंक है।

एकांकी नाटक का आज जो रूप है उसकी अभी कोई अधिक आयु नहीं हुई। महासमर के कुछ वर्ष पूर्व पाश्चात्य रंगमंचों पर एक प्रकार के छोटे नाटक अभिनीत हुए, जो एक दो घंटे में ही समाप्त हो जाते थे। आज के व्यस्त जीवन में पाश्चात्य देशवासियों को इतना समय नहीं, जो वे रात-रात भर जागकर नाटक-घर में बैठकर नाटक देख सकते। इसलिए छोटे नाटक शीघ्र लोक-प्रिय भी हुए। पहले-पहल अमेरिका में विशेष रूप से एकांकी नाटकों का स्वागत हुआ। कई लोगों का ऐसा अनुमान है कि भारत में एकांकी नाटकों की रचना अंग्रजी-साहित्य की देन है। यह बात ठीक नहीं है। भारतीय-साहित्य में बहुत प्राचीन काल से एकांकी नाटकों का अस्तित्व चला आ

रहा है। नाट्य-शास्त्र पर सबसे पहला ग्रन्थ भरतमुनि का मिलता है, उसमें भाण, व्यायोग, अंक, गोष्ठी आदि तेरह प्रकार के एकांकी नाटकों की चर्चा है। हाँ, यह सत्य है कि हिंदी में एकांकी नाटकों के जो रूप आज वर्तमान हैं, उन पर पाश्चात्य नाटककारों के विचार, शैली और संस्कृति का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

'भारतेंदु' हिंदी के पहले नाटककार थे। उनके नाटक रंग-मंच पर अभिनीत किए जाने के लिए लिखे गए थे। 'भारतेंदु' जी ने कई ऐसे छोटे नाटक लिखे हैं, जिन्हें हम एकांकी नाटक मान सकते हैं, 'चंद्रावली', 'प्रेमयोगिनी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' ऐसे ही नाटक हैं। इन नाटकों में एकांकी नाटक की टेकनीक के नाते कुछ परिवर्तन अवश्य करना पड़ेगा, परन्तु इन्हें हिंदी एकांकी नाटकों का आदिरूप मानने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए। 'भारतेंदु' के उपरोक्त नाटकों पर नाट्य कला की प्राचीन परिपाटी की पूरी-पूरी छाप है। आपके पश्चात् पंडित बद्रीनाथ भट्ट और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने कुछ प्रभावशाली और मनोरंजक प्रहसन लिखे। भट्टजी का 'चुंगी की उम्मेदवारी' पढ़कर हम हँसी को रोक नहीं सकते। उग्रजी का पहला एकांकी प्रहसन सन् १९२३ के लगभग 'आज' में 'बहादुर नानसेन्स' के नाम से प्रकाशित हुआ था। 'चार बेचारे' नाम से आज बारह वर्ष पूर्व उग्रजी के एकांकी प्रहसनों का संग्रह हो चुका है। आपके उन प्रहसनों में परिष्कृत एकांकी नाटकों के सभी लक्षण विद्यमान हैं। परंतु सफल एकांकी नाटककार के

रूप में हम सर्वप्रथम स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद को देखते हैं। उन्होंने शुद्ध साहित्यिक नाटकों की रचना की है। उनका 'एक घूँट' सफल एकांकी नाटक है।

पं० गोविन्दवल्लभ पंत और सुदर्शनजी के भी हिंदी-पत्रों में कई एकांकी नाटक प्रकाशित हुए। पंतजी अपने कई नाटकों के द्वारा एक सफल नाटककार सिद्ध हो चुके हैं, उन्हें एकांकी नाटकों की ओर विशेष रूप से गतिशील होना चाहिए।

हिंदी में 'प्रसाद' के बाद डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक सबसे सफल कहे जा सकते हैं। 'रेशमी टाई' और 'पृथ्वीराज की आँखें' नामक आपके संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपके नाटकों में प्रधान रूप से आंतरिक संघर्ष का हृदयग्राही चित्रण रहता है। आपके 'चंपक', 'उषा', 'रेशमी टाई', 'स्त्री और पुरुष' तथा 'अशोक का शोक' उत्कृष्ट एकांकी नाटक हैं। पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी के एकांकी नाटकों का संग्रह 'सुहाग बिंदी' नाम से प्रकाशित हुआ है। द्विवेदीजी के नाटक टेकनीक की दृष्टि से बड़े परिष्कृत हैं; परंतु उनमें आंतरिक संघर्ष का अभाव है। सेठ गोविंददास, भुवनेश्वरप्रसाद, उदयशंकर भट्ट, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, जर्नादनराय आदि के एकांकी नाटकों के संग्रह 'सप्त रश्मि', 'कारवाँ', 'अभिनव एकांकी नाटक', 'दो एकांको नाटक', 'आधीरात' नाम से प्रकाशित हुए हैं। इन लेखकों के अतिरिक्त सर्वश्री उपेंद्रनाथ 'अश्क', जैनेंद्रकुमार, लक्ष्मणसिंह चौहान, अज्ञेय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, भगवती-

चरण वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी', नरेंद्र शर्मा तथा 'कुमार-हृदय' आदि समय-समय पर एकांकी नाटक लिखा करते हैं। 'अश्क' जी का 'लक्ष्मी का स्वागत', जैनेंद्रकुमार का 'टकराहट' और लक्ष्मणसिंह चौहान का 'एक ही समाधि में' एकांकी नाटक हिंदी के उत्कृष्ट नाटकों में गिना जावेगा। इन नाटककारों की रचनाएँ इस दिशा में उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करती हैं।

अनुक्रमणिका

चंपक

डा० रामकुमार वर्मा

[डा० रामकुमार वर्मा हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि और एकांकी नाटक-लेखक हैं। 'चित्ररेखा' नामक काव्य-संग्रह पर आपको २०००) का देव-पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। वर्माजी को एकांकी नाटक लिखने में भी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। 'पृथ्वीराज की आँखें' और 'रेशमी टाई' नाम से आपके एकांकी नाटकों के दो संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'बादल की मृत्यु' आपका प्रथम एकांकी नाटक है।

वर्माजी ने एकांकी नाटकों में पाश्चात्य शैली का बड़ी सफलतापूर्वक समावेश किया है। 'रेशमी टाई', 'पुरुष तथा स्त्री' और 'अशोक का शोक' नामक एकांकी नाटकों की रचना में आप एक आदर्शवादी कलाकार के रूप में सामने आए हैं। वर्माजी की भाषा कवित्वपूर्ण और बड़ी मँजी हुई होती है।]

चंपक

[समय—सात बजे प्रभात । एक साफ़-सुथरा कमरा । अनेक स्थानों पर सुंदर चित्र लगे हैं । एक अल्मारी में कुछ पुस्तकें सजी हुईं हैं। कमरे के बीच में एक बड़ा सा कालीन बिछा हुआ है, जिससे कमरे की शोभा और भी बढ़ गई है। एक छोटी टेबिल है, जिस पर ताजे फूलों का एक गुलदस्ता रक्खा हुआ है । जो वस्तुएँ वहाँ हैं, उनसे यह प्रकट होता है कि इस कमरे में रहनेवाल कवि-हृदय अवश्य है। सजावट में ही सभी वस्तुओं की रूपरेखा है । खिड़की से पूर्वीय आकाश दिखाई पड़ता है। जिसमें सुनहले बादल छाए हुए हैं। कमरे को जैसे वसंत आकर चूम गया है ।

कमरे में दाहिनी ओर कुर्सी पर एक युवक बैठा है। उसका नाम है किशोर। आयु तीस वर्ष के लगभग। वस्त्रों में स्वच्छता और सुरुचि है। आँखों में गाम्भीर्य। बाल बड़े-बड़े घुँघराले हैं, जो उसकी पीठ पर छा रहे हैं। उसके समीप टेबिल पर एक छोटा सा कुत्ता बैठा हुआ है । उसके बड़े-बड़े बाल हैं। माथे में सफेद चिह्न। किशोर बड़े प्रेम से कुत्ते पर हाथ फेर कर कहता है, जैसे स्वप्न-मग्न हो।]

किशोर—चंपक, एक बार तुम्हें देख लेता हूँ, तो जान पड़ता है, [खिड़की की ओर दृष्टि कर] प्रभात का नन्हा सा बादल आँखों भूल गया है। ये देखो, [कुत्ते के कान कोमलता से छूते हुए] तुम्हारे कान, जैसे रेशम के दो छोटे-छोटे टुकड़े ईश्वर ने तुम्हारे सिर के समोप गूँथ दिए हैं। तुम्हारी कोमल पूँछ इंद्र-धनुष के समान झुकी हुई है, और तुम्हारी आँखें ? क्यों ? मेरो बोली समझते हो चंपक ?··· ···[रुककर] लोग कहते हैं, मैं कवि हूँ। पर मेरी कविता तुम्हारे सुनहले बालों के कारण हा सुनहली है। [चंपक को गोद में रखते हुए]······उस दिन तुम्हें देखकर एक कविता लिखी थी—

[स्वर में]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन;
मेरे मन में यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन।

[भाव-मग्न होकर]

इस···तन···में···ही···हो···
मेरा·········मन··········।

[बाहर किसी के आने का शब्द होता है]

किशोर—[तीव्र स्वर में] कौन ?

स्वर—महाशय जी, मैं आ सकती हूँ ?

किशोर—[स्वागत] किसी रमणी का कोमल कंठ-स्वर ! [प्रकट] आइए ।

[दो युवतियों का प्रवेश । दोनों लगभग एक ही वय की हैं। पच्चीस वर्ष । एक अधिक कीमती वस्त्र पहने हुए है । रेशमी सारी से कोमल शरीर सजा हुआ है । उसकी मुद्रा से ज्ञात होता है कि वह एक संभ्रांत परिवार की महिला है । नाम है शकुंतला । उसके हाथ में एक समाचार-पत्र है । दूसरी युवती उसकी सेविका मालूम पड़ती है। वह साधारण वस्त्र पहने हुए है । सदैव अपनी स्वामिनी का वस्त्र देखकर बातें करती है । उनके आते ही किशोर खड़ा हो जाता है । सेविका का नाम है मालती ।]

शकुंतला—[जिज्ञासा की दृष्टि से] आप ही का नाम किशोर है ?

किशोर—[आगे बढ़कर] जी, हा ।

मालती—वही, जिनकी कविताएँ 'रसाल-वन' में निकला करती हैं ?

किशोर—हाँ वही ।

शकुंतला—जिनकी 'चंपक'-शीर्षक कविता ने हिंदी-संसार में हलचल मचा दी है ?

किशोर—[मुस्कुराकर] इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद । मैं वही किशोर हूँ ।

युवती—[समाचार-पत्र देखते हुए] आपने इस समाचार-पत्र में सूचना प्रकाशित की है कि आप एक कुत्ता बेचना चाहते हैं ।

मालती—क्या वह यही है ?

[कुत्ते की ओर संकेत]

किशोर—हाँ, वह यही है।

शकुंतला—[प्रश्न-सूचक दृष्टि से] क्यों, क्या मैं जान सकती हूँ कि आप इसे क्यों बेचना चाहते हैं ?

किशोर—[गहरी साँस लेकर] इसकी एक लंबी कहानी है। उसे पूछने की आवश्यकता नहीं, यदि आप इसे खरीदना चाहती हैं तो यह आपकी सेवा में उपस्थित है। लीजिए।

शकुंतला—आपकी कहानी ही मेरे लेने न लेने का कारण हो सकती है।

मालती—निस्संदेह।

किशोर—यदि ऐसी बात है, तो सुनिए। [सोचते हुए] पिछले महीने की बात है। हलका जाड़ा पड़ रहा था। शुक्ल पक्ष की रात थी। चंद्र की शीतल किरणें पृथ्वी का सारा विषाद धो रही थीं।......

शकुंतला—इस कहानी में कविता भी है ?

[हास्य]

किशोर—या कविता में कहानी है।

शकुंतला—[मुस्कुराकर] क्षमा कीजिए। मैं भूल गई थी कि मैं एक कवि से बात कर रही हूँ। अच्छा, फिर क्या हुआ ?

किशोर—[गंभीर स्वर में] मैं टहलने के लिये एकान्त स्थान में जा रहा था कि एक ओर यह कुत्ता पड़ा हुआ अपने जीवन

की अंतिम साँसें छोड़ रहा था—मुझे करुण नेत्रों से देखकर।

शकुंतला—[उत्साह से] तब तो आप बड़े अच्छे हैं। आज यह कितनी अच्छी दशा में है!

[कुत्ते की ओर ध्यान से देखता है।]

मालती—[शकुंतला के स्वर में] देखिए, कितनी अच्छी दशा में है!

किशोर—[उसी गंभीर स्वर में] मैं उसे उठा लाया। बहुत सेवा की। जो कुछ मेरे पास था, मैंने इसे अच्छा करने में समाप्त कर दिया। अब यह कैसा गुलाब सा सुंदर और हृदय सा चंचल हो रहा है।

शकुंतला—[प्रशंसा के स्वर में] आपका परिश्रम, सफल परिश्रम। यदि इस कुत्ते के मन में समझने की शक्ति है, तो आप ही इसके ईश्वर हैं, जीवनदाता हैं।

किशोर—ईश्वर तो एक बड़ी शक्ति है। मेरे हाथ तो मेरे जीवन के समान ही निर्बल हैं। मैं कर ही क्या सकता हूँ? केवल सेवा, केवल प्रेम।

शकुंतला—कविवर, मेरे लेखे यही ईश्वरत्व है।

मालती—[युवती की ओर देखकर] निस्संदेह।

किशोर—उस दिन से यह चंपक मेरे जीवन का सब कुछ हो गया......।

शकुंतला—[बीच ही में हर्ष से] चंपक ! ओहो, नाम भी आपने कितना सुंदर रक्खा है ! चंपक !!

मालती—कितना सुंदर ! चंपक !!

किशोर—प्यारा चंपक ! इसे देखते ही न-जाने क्यों मेरे मन में यह नाम आ गया। शायद इसमें इतना सौंदर्य है। [चंपक को हाथ में उठा लेता है।] कुरूपता के काले भौंरे को यह अपने समीप नहीं आने देना चाहता।

शकुंतला—[उल्लास से] सचमुच !

किशोर—[चंपक पर हाथ फेरते हुए] मैं जब टहलने जाता हूँ तो धूम्रकेतु की भाँति मेरे पीछे इसी की रेखा होती है। मुझे भय होता है, कहीं इसके पैर मैले न हो जावें। जब मैं भोजन करता हूँ, तो मेरे समीप बैठकर मेरे जूठे भोजन की लालसा करता है। मुझे भय होता है, कहीं कड़ी रोटी इसके मुँह में पहुँचकर कष्ट न दे। इसलिये मैं स्वयं कड़ी रोटी खाकर इसके लिये कोमल हिस्सा छोड़ देता हूँ। जब मैं सोता हूँ, तो मेरे पैरों के समीप आकर मेरे लिहाफ़ में छिप रहता है। बहुत धीरे से मेरे पैरों पर अपना सिर रख देता है मानों रात भर मेरे चरणों के समीप बैठकर मेरी आराधना करता रहता है। मुझे भय होता है, कहीं सोते में उसके मुख पर मेरा पैर न पड़ जाय। जब मैं कविता करता हूँ, तो इसके कोमल बालों पर हाथ रखकर......।

[स्वर से धीरे धीरे]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन ;
मेरे मन में यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन।

शकुंतला—ये तो उसी 'चंपक'-शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं। फिर, महाशय, जब यह चंपक आपको इतना प्रिय है, तो इसे बेचने की कल्पना तो बहुत ही कठिन है।

माधुरी—[उसी स्वर में] बहुत ही कठिन।

किशोर—हाँ, दीखता तो यही है, पर मुझे उसकी कल्पना ही नहीं, सत्यता का भी पालन करना है।

शकुंतला—कैसे ?

किशोर—मैं इसकी सेवा कर चुका। अब यह अच्छा है! वसंत के समान उज्ज्वल और सुंदर। अब मुझे इसे विदा ही कर देना चाहिए।

शकुंतला—मैं नहीं समझ सकी।

[जिज्ञासा की दृष्टि]

किशोर—इतनी लंबी कहानी कहने पर भी नहीं समझ सकीं ? मेरा प्रेम दुःख और वेदना का बंधु है। इस संसार में जहाँ दुःख और वेदना का अथाह सागर है, वहाँ ऐसे प्रेम की अधिक आवश्यकता है।

शकुंतला—[कौतूहल से] पर इससे और चंपक से क्या संबंध ?

किशोर—[लंबी साँस लेकर] मैं केवल उसी को प्यार करना चाहता हूँ, जिसका साथ देने में सबको आपत्ति है। उसी का साथी मैं बनना चाहता हूँ। जिसकी साँस में हवा के स्थान में वेदना है, उसी के समीप रहकर मैं उसकी सेवा करना चाहता हूँ। अब चंपक दुःखी नहीं है उसकी करुणा-जनक परिस्थिति अब निकल गई। अब वह सुखी है।

शकुंतला—तो उसे बेच डालने से लाभ ?

किशोर—बहुत लाभ है। इसके साथ रहने के कारण मेरे जीवन का बहुत सा समय अब उसकी सेवा में नहीं, उसके लाड़-प्यार में निकल जाता है। इससे मैं अन्य पीड़ितों की सहायता नहीं कर सकता। लाड़-प्यार तो समय-कुसमय सभी कर सकते हैं। उस दिन यह चंपक रास्ते में घायल पड़ा था। मैं इसके दुःख को नहीं देख सका। ले आया। एक महीने की सेवा से यह अच्छा हो गया। अब इसे छोड़ देना पड़ेगा। किसी दूसरे दुःखी की खोज करनी होगी। अब उसकी सेवा करूँगा।

शकुंतला—पर इससे आपको वेदना न होगी ?

किशोर—यही मेरा जीवन है। दूसरों की वेदना मैं अपने जीवन में रखकर उसे सुखी कर देना चाहता हूँ। लोग कहते हैं, मेरा जीवन एक करुण गान है, पर उस करुण गान का सबसे मीठा स्वर है यह चंपक। इसे भी अब दूर कर किसी दूसरे मीठे स्वर की खोज करूँगा।

[गंभीर मुद्रा]

शकुंतला—[विस्मय से] आप वास्तव में कवि हैं, और जीवन के महान कवि हैं।

मालती—सचमुच।

किशोर—मैं अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहता। आप मेरे चंपक को लेंगी?

शकुंतला—आपकी कहानी से तो चंपक का मूल्य बहुत बढ़ गया। अब तो मैं अवश्य लूँगी।

किशोर—[गंभीर स्वर में, जैसे पिछली बातों को नेत्रों से देख रहा हो] कई खरीदनेवाले आए, पर मैंने उन्हें न दिया, यद्यपि वे इसकी बड़ी ऊँची कीमत लगा रहे थे। मैंने सोचा, किसी ऐसे व्यक्ति को दूँ जो चंपक का मूल्य समझे। आपके हृदय ने मेरे चंपक को पहचाना है। मुझे लाभ ही क्या होता, यदि ऊँची कीमत देकर वे लोग मेरे चंपक को दुःख से रखते या उस प्रकार न रखते जिस प्रकार मैं चाहता हूँ। चंपक की संभवतः फिर पहले जैसी दशा हो जाती। मुझे कीमत प्यारी नहीं है। मुझे अपनी चीज़ प्यारी है, वह भी बेची जानेवाली। आप मेरा आशय समझ रही हैं?

शकुंतला—[उत्साह से] हाँ, मैं आपके हृदय को समझ रही हूँ दीजिए यह चंपक मुझे [मालती की ओर देखकर] मालती, उठा लो यह प्यारा चंपक। इसे हम लोग बहुत प्यार से

रक्खेंगे। मैं कवि के समान तो शायद प्यार न कर सकूँ, पर.........।

[मालती चंपक को उठाती है]

किशोर—नहीं आप मेरे ही समान, मुझसे अधिक प्यार कर सकेंगी। आपके पास स्त्री-हृदय है, जिसमें करुणा अमृत बनकर बहा करती है।

शकुंतला—[लज्जित होकर] धन्यवाद! [चंपक को छूते हुए, बात बदलने के विचार से] कितना सुंदर है यह। माथे में सफेद चिह्न है, जैसे प्रकृति ने इसे तिलक लगा दिया है। कोमल शरीर जैसे कपास की राशि हो।

किशोर—इसके पैर भी कैसे सफेद हैं, जैसे सुधा इसके चरणों को चूम रही है! बाल इतने बढ़ आए हैं, मानों वे आप से बातें करने के लिये समीप आना चाहते हैं।

शकुंतला—अच्छा, मैं इसका कितना मूल्य दे दूँ?

किशोर—जितना आप चाहें। मुझे मूल्य की आवश्यकता नहीं। मैं अपने अमूल्य चंपक को उपहार-स्वरूप आपको दे देता, पर मुझे दुखियों की सेवा करने के लिये पैसों को आवश्यकता-पड़ती है। यह रूखा संसार हृदय की कोमल भावनाओं को प्रमाणित करने के लिये रुपयों का माप-दंड चाहता है।

शकुंतला—तब मैं अधिक-से-अधिक दूँ।

किशोर—जैसी इच्छा। आपका शुभ नाम?

शकुंतला—मेरा नाम शकुंतला। पर नाम से क्या?

किशोर—क्यों नहीं? मेरे चंपक की रक्षा करनेवाली का नाम धर्म से भी अधिक पवित्र है। वह नाम ईश्वर के नाम के साथ लिया जा सकता है।

शकुंतला—[मुस्कुराकर] आप तो उस पर कविता भी लिख सकते हैं। लीजिए ये सौ रुपए। [मालती से] मालती, ले चलो चंपक को। मैं जाऊँ? नमस्ते।

मालती—चलिए।

[दोनों उठ खड़ी होती हैं]

किशोर—[उठकर] आप जा रही हैं? ठहरिए। एक मिनट। मैं अपने चंपक को देख लूँ। उसे एक बार चूम लूँ।

शकुंतला—[प्रसन्नता से] एक नहीं, अनेक बार। [मालती से] मालती, कविवर को चंपक दे दो।

[किशोर मालती से लेकर चंपक को हृदय से लगाकर चूमता है। करुणार्द्र नयनों से मालती को देते हुए चंपक को फिर एक बार हृदय से लगाकर आँखें बंद कर लेता है। चंपक को सामने करता हुआ कहता है, जैसे मूर्च्छा-सी आ रही है।]

चंपक, मेरे घायल होनेवाले चंपक! तुम जा रहे हो? तुम्हारा पैर अच्छा हो गया। जाओ। सुख से रहो। मेरे चंपक, तुम्हें फिर एक बार वही गीत सुना दूँ?

[स्वर से]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन।

पर···पर अब तो तुम जा रहे हो। मेरा जीवन तुमसे कैसे उलझा रहेगा ? मेरा क्या ? जाओ। मेरे चंपक !

[चूमता है]

[शकुंतला और मालती किशोर को अनिमेष देख रही हैं। किशोर चंपक को मालती के हाथों में रखता है।]

शकुंतला—[करुणार्द्र होकर] **कविवर, आपका यह प्रेम देखकर मुझे वेदना हो रही है।**

किशोर—[दृढ़ता से] **नहीं, यह तो चंपक की प्रशंसा है। अच्छा, अब आप जा सकती हैं। धन्यवाद ! नमस्ते।**

[शकुंतला और मालती चंपक को लेकर धीरे-धीरे जाती हैं। जब तक चंपक दिखाई पड़ता है, किशोर अनिमेष नेत्रों से उसे देखता रहता है। दृष्टि से ओझल होने पर एक गहरी साँस लेता है। मुद्रा में वेदना।]

किशोर—[टहलता हुआ, धीरे-धीरे]

मेरे···मन···में···यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन।

[विरक्ति से]

उँह······अब तो वह गया। सदैव के लिये। [सोचकर] **चंपक, चंपक ! तुम घायल ही रहते, तो अच्छा था। मेरे अच्छे होने-वाले चंपक ! तुम अच्छे ही क्यों हुए ? अच्छे क्यों हुए ?**

[ललिता का प्रवेश। वह सात वर्ष की बालिका है। बड़ी चंचल और मचलनेवाली। तितली की तरह उड़ती आती है। उसके माथे

पर बाल फैल रहे हैं, पर सुंदरता के साथ। उसके हाथ में रोटी है। आते ही बड़ी उत्सुकता के साथ बोलती है]

भैया ! चंपक कहाँ है ? मैं यह रोटी उसे खिलाने के लिये लाई हूँ ।

[कमरे में चारों तरफ़ देखती है, जैसे कोई चीज खो गई है। उत्सुकता से]

चंपक—कहाँ···?

किशोर—चंपक ? चंपक एक दूसरी जगह चला गया है। ललिता, मेरी बहिन !

[ललिता के बिखरे बालों को सँवारता है]

ललिता—कहाँ ?

किशोर—जहाँ उसे बहुत आराम मिलेगा। अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ खाने को मिलेंगी। तुम तो यहाँ उसे रोटियाँ ही खिलाती थीं, वे भी सूखी।

ललिता— [निराशा से] **तो अब वह यहाँ न आवेगा ?**

किशोर—नहीं।

ललिता—क्यों ? [साश्रु नयन]

किशोर—तुम उसे अच्छा खाना नहीं खिलाती थीं।

ललिता—अच्छा, तो उसे ला दीजिए। अब मैं उसे अच्छा खाना खिलाऊँगी। मिठाइयाँ खिलाऊँगी।

किशोर—सचमुच ?

ललिता—हाँ, सचमुच जाइए। मेरे चंपक को जल्द लाइए।

किशोर—[दीवार की ओर शून्य दृष्टि से देखता हुआ] वह मुझसे नाराज हो गया है। अब न आवेगा।

ललिता—मुझसे तो नाराज नहीं हुआ। मैं उसे अपने पास रखूँगी ! आपसे कोई मतलब नहीं।

किशोर—नाराजी से उसने कहीं मुझे काट लिया, तो ?

ललिता—नहीं काटेगा। मैं उससे कह दूँगी। आप जाइए। उसे जल्दी लाइए।

किशोर—[अस्थिर होकर, स्वगत] क्या करूँ ? [प्रकट] सुनो, चंपक को तुम्हारी बहिन ले गई हैं। मैं उनसे कह दूँगा कि वह ललिता के पास चंपक को कभी कभी ले आया करें।

ललिता—कौन बहिन ?

किशोर—तुम्हारी एक बहिन हैं, उनका नाम है शकुंतला देवी।

ललिता—मैं किसी को नहीं पहचानती। आप मेरे चंपक को ला दीजिए।

[रोने लगती है]

किशोर—[आश्वासन देते हुए] अच्छा, अभी जाता हूँ। अगर चंपक नहीं मिलेगा, तो उससे अच्छा चंपक लाऊँगा। तुम उसके लिये अच्छी अच्छी रोटी तैयार करो।

ललिता—नहीं, मैं मिठाई खिलाऊँगी।

किशोर—[मुस्कुराकर] अच्छा, मिठाई ही सही। जाओ मिठाई तैयार करो। मैं भी चंपक की खोज में जाता हूँ।

[ललिता जाती है]

[किशोर बाहर जाने के लिए कपड़े पहनता है। इतने में ही बाहर से एक स्वर]

भूखे को एक रो ओ टी.........।

किशोर—कौन है ?

[एक पचास वर्ष के वृद्ध का प्रवेश। उसके कपड़े फटे हुए हैं। सारा शरीर रूखा और कुरूप। उसका दाहिना पैर टूट गया है, जिससे उसे लँगड़ाकर चलना पड़ता है। उसके हाथ में एक लाठी है। उसके सहारे वह अपने शरीर का बोझ रखे हुए है। वह कराहता हुआ-सा बोलता है—]

भूखे को एक रोटी दे दो।

किशोर—[समवेदना के स्वर में] तुम भूखे हो ?

वृद्ध—[दुःख से] मैंने चार दिन से अन्न नहीं देखा। माँगते-माँगते हैरान हूँ। लोग हँसी उड़ाकर मेरे सामने ही लँगड़े बनने की नकल करते हैं। चिढ़ाते हैं। गाली देते हैं।

किशोर—गाली देते हैं ? बड़े खराब हैं। तुम मेरे पास क्यों नहीं चले आए ? [सहारा देता है]

वृद्ध—[उल्लास से] ओह, मालूम कहाँ था कि तुम्हारे समान देवता भी इसी जगह रहते हैं।

किशोर—[नम्रता से] देवता नहीं, सेवक कहो।

[समीप की कुर्सी पर बिठलाता है]

वृद्ध—[बैठते हुए] सेवक कहूँ, तो देवता किसे कहूँ ? आज तुम्हारे घर आकर समझ रहा हूँ कि यह संसार बिलकुल बुरा नहीं है।

किशोर—अच्छा, पहिले खाना खाइए। फिर अपनी कहानी कहिए। मैं अभी आपके लिए खाना मँगवाता हूँ। [जोर से] ललिता, खाना लाना।

ललिता—[नेपथ्य से] क्या चंपक आ गया? मेरा चंपक! [प्रवेश] मेरा चंपक! [चंपक को न देखकर निराशा की दृष्टि से] चंपक कहाँ है?

किशोर—चंपक नहीं है। ये भूखे महाशय आए हुए हैं। इनके लिए थोड़ा खाना लाओ।

ललिता—[चिढ़े हुए स्वर में] मैं चंपक के सिवा किसी को खाना न दूँगी।

किशोर—[जोर देकर, दृढ़ता से] लाओ खाना। मैं कह रहा हूँ, खाना लाओ। और जल्दी।

[ललिता निराश और दुःखी होकर जाती है]

किशोर—[वृद्ध से] क्षमा कीजिए। खाना अभी आता है।

वृद्ध—[सोचते हुए] यह चंपक कौन?

किशोर—चंपक? एक छोटा सा प्यारा कुत्ता था। अब वह मेरे पास नहीं है। छोटी बहिन उसके लिए बहुत दुःखी है।

वृद्ध—वह कहाँ गया?

किशोर—उसे मैंने बेच दिया।

वृद्ध—क्यों? [जिज्ञासा की दृष्टि]

किशोर—जिससे वह अधिक सुखी रहे, और मैं दुखियों की सेवा कर सकूँ।

वृद्ध—क्या उसके रहने से दुखियों को सेवा नहीं हो सकती।

किशोर—नहीं, जब तक वह घायल था......।

वृद्ध—[चौंककर] घायल......?

किशोर—हाँ, घायल। उसका पैर टूट गया था। खून बह रहा था। मैंने उसकी थोड़ी सेवा की। वह एक महीने में अच्छा हो गया। उससे मेरा बहुत मोह हो गया था। उसके कारण मेरे सेवा-कार्य में बहुत बाधा पड़ती थी। जब वह अच्छा हो गया, तो मैंने उसे अपने-से अधिक संभ्रांत युवती के हाथ बेच दिया, जिससे वह अधिक सुख के साथ रह सके, और मैं अपना कर्त्तव्य कर सकूँ।

वृद्ध—[स्वप्न-सा देखता हुआ] घायल हो गया था। उसके पैर में चोट थी?

किशोर—हाँ, आगे का पैर तो उठ ही नहीं सकता था।

वृद्ध—[गंभीरता से, धीरे-धीरे] आगे...का...पैर...। उसके माथे में सफेद चिह्न था?

किशोर—हाँ, जैसे प्रकृति ने उसे सफेद तिलक लगा दिया हो।

वृद्ध—[करुणा से] तब मैंने ही उसे मारा था, मैंने ही उसे चोट पहुँचाई थी।

किशोर—आपने? [आश्चर्य]।

वृद्ध—[वेदना से] हाँ, मैंने ही।

किशोर—यह कैसे?

वृद्ध—वह मेरे पड़ोसी का पालतू कुत्ता था। बहुत प्यारा। उन्होंने

उसे बड़े प्रेम से पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह इतना सीधा और चतुर था कि हमेशा घर के बच्चों का खिलौना बना रहता था। उसके खाने के लिए बाज़ार से मिठाइयाँ मँगवाई जाती थीं। दिन भर में उसे न जाने कितनी चीजें खिला दी जाती थीं। एक दिन मैं बहुत भूखा था। मुझे दो रोज़ से खाना न मिला था। उस दिन मैंने उनके यहाँ जाकर खाना माँगा। मुझे तो खाना न दिया गया, मेरे ही सामने कुत्ते को पूरियाँ खिलाई गईं। मैं कुत्ते का इतना लाड़-प्यार न देख सका। यह जलन मेरे हृदय में इतनी बढ़ी कि एक दिन मैंने उसे चुराकर खूब पीटा, और जब उसकी टाँग टूट गई तो अँधेरे में दूर ले जाकर रास्ते में फेंक दिया।

किशोर—ओह। बड़े निर्दयी हैं आप।

वृद्ध—[अपने ही स्वर में] लोगों ने समझा, वह मर गया था किसी के द्वारा चुरा लिया गया। मेरे पड़ोसी के बच्चे उस कुत्ते के लिए बहुत दिनों तक रोते रहे। मेरे सामने ही वे धूल में लोटते और गलियों-गलियों अपने कुत्ते को खोजते फिरते। एक बच्चे के मन पर तो कुत्ते के खो जाने का इतना सदमा पहुँचा कि वह एक महीने तक बीमार रहा। वह कुत्ता घायल अवस्था में कितनों दिनों तक पड़ा रहा, यह मैं नहीं जानता।

किशोर—ओफ़, इतनी निर्दयता। [आँखें बंद कर लेता है]

वृद्ध—उस समय न-जाने मेरे हृदय में इतनी जलन कैसे हो गई

थी ! कुत्ते इतने लाड़-प्यार से पाले जायँ, और भूखे मनुष्यों की ओर समाज ध्यान भी न दे ! कुत्ते मखमली गद्दों पर सुलाए जायँ और हम गरीबों को सोने के लिए टाट भी नसीब न हो ! कुत्ते दूध-मलाई खायँ और हम लोग सूखे टुकड़ों के लिये तरसें । उनका अल्फ्रेड-पार्क में प्रदर्शन हो, और हम लोग......।

किशोर—पर तुम्हीं सोचो, इसमें उन बेचारे कुत्तों का क्या दोष ?

वृद्ध—[रुककर] हाँ, यह बात सोचने पर मुझे पीछे मालूम हुई । उसी अपराध की सजा तो शायद मुझे नहीं मिली? एक हाथ भरकर मैंने अपनी लकड़ी जैसे ही कुत्ते पर मारी, वैसे ही, उसके थोड़े से हट जाने के कारण वह मेरे पैर में आ लगी, और कुत्ते के साथ मैं भी लँगड़ा हो गया । पहिले तो भूख का ही दर्द था, अब पैर का भी हो गया । तब से लँगड़ा हो गया हूँ । [वेदना की आह]

किशोर—आह ! आपने मेरे चंपक को इतना दंड दिया ! निरपराध चंपक को !

वृद्ध—हाँ, रोटी के सिवा जो चाहे दंड दो, मैं सब सह लूँगा

किशोर—महाशय, क्या ईश्वर की दृष्टि में यह दोष क्षम्य हो सकता है ? ओह, एक निरपराध को इतना दंड ! यदि तुम भूखे और लँगड़े न होते, तो तुम्हें इस पाप के लिये बहुत कुछ करना पड़ता । जान-बूझकर पाप करनेवाले ! ईश्वर से क्षमा माँगो ।

वृद्ध—[विकृत स्वर से] मैं बहुत दिनों से ईश्वर से क्षमा माँग रहा हूँ। पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ। ईश्वर से मैंने क्षमा माँगी, तुमसे रोटी माँगता हूँ। मैं भूखा हूँ मुझे रोटी दो।

किशोर— अभी रोटी आ रही है। बिलकुल ताजी। साथ-साथ ललिता के हाथ की बनाई हुई मिठाई भी। अच्छा तुम्हारे पैर की चोट कैसी है ?

वृद्ध—बहुत दर्द है !

किशोर—तो मेरे यहाँ ठहरो। मुझे अपनी सेवा करने का अवसर दो। जब तुम्हारा पैर अच्छा हो जाय, तब तुम चले जाना। तब तक यहाँ रहकर मुझे अपसे सत्संग का अवसर दो। पहले निरपराधी की सेवा करता था। अब, अपराधी की सेवा करूँगा।

वृद्ध—[आँखें फाड़कर] ऐं···धीरे-धीरे किशोर के शब्दों को दुहराता हुआ] पहले···निरपराधी···की···सेवा···करता ···था,···अब···अपराधी···की सेवा···करूँगा। ओह, तुम देवता हो ! बतलाओ, तुमने अपना चंपक किसे बेच दिया है ?

किशोर—क्यों ? एक संभ्रांत युवती शकुंतला देवी को।

वृद्ध—[अस्थिर होकर] तो···तो···मैं वहीं जाऊँगा, शकुंतला देवी के यहाँ भीख माँगकर, नौकरी कर चंपक की सेवा करूँगा। तभी मुझे शांति मिलेगी। चंपक ! चंपक ! अच्छा, मैं अब जाता हूँ।

किशोर—जाना। जरूर जाना। पर पहिले अपना पैर तो अच्छा हो जाने दो।

वृद्ध—[दृढ़ता से] नहीं, अब मैं अपना पैर अच्छा न होने दूँगा। यह मेरे पश्चात्ताप की स्मृति होकर रहेगा। उसके दर्द से कराहूँगा, और अपने पश्चात्ताप की अग्नि में जलूँगा। एक दिन इसी तरह मर जाऊँगा। अब मैं अच्छा होना नहीं, चाहता। मैंने बड़ा भारी पाप किया है। पहले चंपक को जितना मारा था, उससे अधिक उसकी जब सेवा कर लूँगा, तभी मुझे थोड़ी शांति मिलेगी। तुमने एक पल-भर में मुझमें इतना बड़ा परिवर्तन ला दिया। सेवा का इतना बड़ा आदर्श बतला दिया। [किशोर के शब्दों को पुनः दुहराते हुए धीरे-धीरे] पहले...निरपराधी...की...सेवा...करता...था,...अब...अपराधी...की...सेवा...करूँगा। देवता! स्वर्ग के देवता! तुम पृथ्वी पर कैसे [चौंककर] शकुंतला देवी का मकान कहाँ है?

किशोर—विक्टोरिया-पार्क के समीप।

वृद्ध—तो मैं वहीं जाऊँगा।

[उठकर चलना चाहता है।]

किशोर—[उत्सुकता से] खाना तो खाते जाइए।

वृद्ध—अब मुझे भूख नहीं है।

किशोर—एक मिनट ठहरिए।

वृद्ध—नहीं अब मैं जाऊँगा। [प्रस्थान]

किशोर--[जोर से] ललिता !

ललिता--[प्रवेश कर] क्या है भैया ? चंपक नहीं आया ? खाना तैयार है। अच्छी मिठाई भी तैयार है। मैंने अपने हाथ से छोटे-छोटे लड्डू चंपक के लिये तैयार किए हैं। चंपक कहाँ है ?

[नेत्रों में उत्सुकता और करुणा]

किशोर—[ललिता को चूमकर] नहीं मेरी ललिता, चंपक नहीं आया। वह भी गया और उसका मारनेवाला भी।

ललिता—[आँखों में आँसू भर कर] कैसा मारनेवाला ?

किशोर—वही भूखा भिखारी। वह भी गया। कल मैं शकुंतला देवी से तुम्हारे लिये थोड़ी देर को चंपक माँग लाऊँगा। तुम उसे अच्छी-अच्छी मिठाई खिलाकर लौटा देना। तुम्हारे लिये दूसरा चंपक ले आऊँगा।

ललिता—[सरलता से] खाना तो तैयार है। मिठाइ रखी हुई है। किसे खिलाऊँ ? आप ही खा लीजिए।

किशोर—[ललिता के बाल सुधारते हुए] अब किसी दूसरे भूखे को आने दो तब मैं भोजन करूँगा।

[धीरे-धीरे प्रस्थान। ललिता जैसे कुछ नहीं समझ सकती। वह किशोर को उदास देखकर अपना रोना भूल गई। वह किशोर को शून्य नेत्रों से देखती हुई उसके पीछे-पीछे जाती है।]

न्याय-मंदिर

श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी'

[श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी' हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध नाटककार हैं। स्वर्गीय बाबू जयशंकर 'प्रसाद' के अनन्तर हिन्दी में उच्चकोटि के ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन करने में ये ही विशेष सफल हुए हैं। 'प्रसाद' जी ने भारतीय इतिहास के प्राचीनकाल से इतिवृत्त का संग्रह किया है और इन्होंने मध्यकाल की कथा ली है। इनकी भाषा सरल और स्वाभाविक होती है। इधर अन्य लोगों की देखादेखी इन्होंने भी कई एकांकी नाटक लिखे हैं। 'मंदिर' नाम से इनके सात एकांकी नाटकों का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। काव्यतत्त्व, नाट्यतत्त्व और अभिनवतत्त्व की दृष्टि से इनके एकांकी नाटकों में भारतीय नाट्यशास्त्र का भी बहुत कुछ अनुगमन दिखाई देता है अर्थात् चरित्र-वैशिष्ट्य के लिए रस-पद्धति का सर्वथा त्याग नहीं किया गया है।]

न्याय-मंदिर

पहला दृश्य

[स्थान-जंगल में एक कुटी। भील-कुमारी श्यामा और मेवाड़ के युवराज अजयसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं। प्रभात का झुटपुटा हो गया है, दीपक बुझने के लिए किसी फूँक की प्रतीक्षा कर रहा है]

कुमार—श्यामा, अब मुझे जाना ही होगा। समाज के नियम निर्दय हैं। दो मिलनोत्सुक हृदयों को सूर्य के प्रकाश में मिलने की आज्ञा वह नहीं देता। देखो, आकाश लाल हो चला है, पक्षी चहक उठे हैं। आकाश में वह जो लाल गोला-सा उदय हो रहा है वह मुझसे कह रहा है, जाओ, कर्म-पथ तुम्हारी बाट जोह रहा है।

श्यामा—मैं जंगली हरिणी हूँ। नगरों से और महान् व्यक्तियों के समाज से मेरी जान-पहचान नहीं है। लेकिन, मेरा भी अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व है। मेरे भी माँ-बाप हैं,

पड़ौसी हैं, जातिभाई हैं, और सहेलियाँ हैं और उन सभी ने मेरे सामने मर्यादा की कुछ रेखाएँ खींच रखी हैं। आप मेवाड़ के युवराज हैं, और मैं एक भील की कन्या, फिर भी आत्म-गौरव को ऐश्वर्य और शक्ति की तराजू पर नहीं तोला जा सकता।

कुमार—तुम्हारा मतलब !

श्यामा—मतलब यही कि भील-समाज अपनी मर्यादा को किसी प्रकार राजपूतों के उच्चतम वंश के आगे झुकाने को प्रस्तुत नहीं। वह आपकी मुझपर कृपा की कोर देखकर तलवार से मेरा सिर उतारने को उतावला होगा।

कुमार—इसका उपाय ?

श्यामा—उपाय यही है कि यदि पर्वत-मालाएँ इस सरिता को निर्वासन दें तो आप मुझे समुद्र की लहरों सी भुजाओं में स्थान दें। आप अपना प्रेम का अंचल फैलाएँ, तो संसार जिसे समाज कहता है उस वृक्ष से झड़कर मुसकराती हुई, उसमें आ कूदूँगी। लेकिन यह अन्धकार का आवरण डालकर अपनी मनोभिलाषा काली नहीं करूँगी।

कुमार—तुम क्या चाहती हो ?

श्यामा—वही जो मुझे चाहना चाहिए। आज रात आप मेरे एकांत के अतिथि रहे हैं यह बात संसार से छिपी न रहेगी और वह इस बात पर विश्वास भी नहीं करेगा कि मधुप फूल के पास जाकर भी रस से वञ्चित रहा है। मैं कहती हूँ

अपनी लालसा को अँधेरी गुफा में रखकर चोर न बनाओ, प्रकाश में लाकर विद्रोही भले बनाओ। हमें समाज को जंजीरें तोड़नी चाहिएँ। बोलो कुमार, क्या आप मेरा हाथ उसी तरह पकड़ सकते हैं, जिस तरह राजपूत-कन्या का ?

कुमार—श्यामा ! तुम भीलराज की कन्या हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें शिक्षा की आँखें भी दी हैं। सुन्दर संस्कारों से भी विभूषित किया है। भगवान् ने तुम्हें बनाते समय अपने हृदय का सम्पूर्ण रस और स्नेह ढाला है। तुम महातेज की एक किरण हो—विद्युत की रेखा हो—जाति-पाँति के बादल तुम्हारे तेज को छिपा नहीं सकते, उलटे तुम्हारे तेज से प्रकाशित हो उठे हैं। यदि मैं तुम्हें अपने जीवन में साथ रख सकूँ तो इससे बड़ी सुख की बात मुझे क्या हो सकती है, किन्तु...

श्यामा—किंतु क्या ?

कुमार—किंतु, मैं हूँ मेवाड़ का युवराज ! मुझपर मेरा विशेष अधिकार नहीं है। आज की रात भी मैंने चुराकर ही तुम्हें दी है और उसका दण्ड मुझे क्या भोगना पड़ेगा, यह भगवान ही जाने। मेरा जीवन प्रजा की धरोहर है, उसकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि समाज के शांत जीवन में भयंकर कोहराम पैदा किये बिना हम अपनी इच्छाओं के फल नहीं खा सकते।

श्यामा—तो, कुमार, क्या चिरकाल के लिए काल-रात्रि से भी

अधिक काला अंधकार कर देने के लिए ही आपने मेरी कुटी में स्नेह का दीपक जलाया था ? जो कुटी आपकी प्रेम-भरी साँसों से अनुप्राणित हो चुकी है, उसमें जीवन भर प्रलय की आँधी चलती रहेगी ? जिन आँखों ने आपको देखा है, वे निरंतर जलती ही रहेंगी ? आँसुओं का महासमुद्र भी उन्हें बुझा न सकेगा, उनकी ज्योति बुझ जायेगी लेकिन जलन नहीं बुझेगी।

कुमार—श्यामा ! तुम मुझसे जो कहोगी मैं वही करूँगा, किंतु मुझे तुम्हारे विवेक पर विश्वास है।

श्यामा—कुमार, मैं भीख नहीं माँगती और भीख नहीं माँगूँगी। मैं समझती हूँ, जिसे हृदय चाहता है उसे प्यार करने का मुझे अधिकार है और उस अधिकार से मुझे समाज का न्याय-दण्ड भी वंचित नहीं कर सकता।

[नेपथ्य में तुरही की आवाज़]

कुमार—सुनती हो श्यामा ! हमारे सैनिक-शिविर में रण की तुरही बज रही है। तुममें कितना नशा है, श्यामा, मैं भूल ही गया था कि मुझे आज रण-यात्रा पर जाना है। तुम्हें सामने पाकर मैं अपने जीवन का आदि-अंत भी भूल जाता हूँ, किंतु संसार का कटु सत्य तुरंत ही तुरही बजाने लगता है। मुझे प्रेम-मदिरा का प्याला फेंककर कर्म की तलवार हाथ में लेनी पड़ती है।

श्यामा—किंतु, हिंसा ही जीवन की चरम साधना नहीं है।

कुमारि, जिनके हाथ में राज-दंड है, वे हिंसा का उत्तर हिंसा से देने को मजबूर हैं। मैं कितना सोचता हूँ कि मैं राजकुमार न होता, एक गरीब किसान होता तो मेरा उत्तरदायित्व कितना हलका रहता। मैं अपने आपको तुम्हारे चरणों पर डालकर जीवन को सफल समझता। लेकिन अब मैं हूँ मेवाड़ का राजकुमार। मेरे ऊपर देश और जाति की मान-रक्षा का बोझ आठों पहर लदा रहता है। फिर मेवाड़! उसपर तो लालची आँखें, उसके उन्नत मस्तक को झुकाने की स्पर्धा लेकर टकटकी लगाये रहती हैं। मालवे के सूबेदार ने फिर मेवाड़ पर आक्रमण किया है। हमें आज उससे लोहा लेना है। तुम सुन चुकी हो कि तुरही सैनिकों को बुला रही है, लेकिन मुझे तो तुमने छीन लिया है।

[नेपथ्य में गान]

सैनिक देख गगन की लाली!

निद्रा की अब छोड़ खुमारी,
पटक प्रेम की प्याली प्यारी,
पकड़ हाथ में तेज दुधारी,
तुझे पुकार रही है काली!
सैनिक, देख गगन की लाली!

मृदु फूलों की सेज जलादे,
गलबाँही का हार हटादे,
चढ़ घोड़े पर, एड़ लगादे,

रच मुंडों की माला, माली !
सैनिक, देख गगन की लाली !

जब नभ में उजियाला छाया,
क्यों कुटिया में दीप जलाया,
रवि ने तुझको मार्ग दिखाया,

तेरे पथ पर रोली डाली !
सैनिक, देख गगन की लाली !

कुमार—सुन रही हो, श्यामा ! बाहर चारणी गा रही है। मुझे उसका आदेश मानना ही पड़ेगा। आशा है तुम मुझे रणयात्रा पर उसी तरह मुसकराती हुई उल्लसित हृदय से बिदा दोगी, जिस तरह राजपूतानियाँ देती हैं।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

श्यामा—तुम आ गयीं चारणी ! तुम्हारा बस चले तो रक्त के महासमुद्र में सारे संसार को डुबादो, जिसमें केवल तुम्हारा त्रिशूल झंडे की तरह खड़ा दिखाई दे।

चारणी—श्यामा ! तुम मेरे लिए अपरिचित नहीं हो। तुम्हें जितना मैं जानती हूँ उतना शायद कुमार भी नहीं जानते। तुम इस बात से अनभिज्ञ नहीं हो कि लाल समुद्र में प्रेम का श्वेत कमल बहुत सुंदर दिखाई देता है। शक्ति और स्नेह, इन्हीं तानों-बानों से सृष्टि के पट का निर्माण हुआ है। तुम्हारे अरमानों को संसार का आशीर्वाद मिलेगा या नहीं यह मैं नहीं जानती किंतु इस चारणी का अनुमोदन

अवश्य मिलता रहेगा। मैं कुमार की आँखों में प्रेम का पानी और युद्ध की ज्वाला दोनों देखना चाहती हूँ! कुमार, तुम्हें रण-यात्रा पर प्रस्थान करने का समय याद है न! तुम वह घड़ी चूक गये हो!

कुमार—मुझे तुरंत पहुँचना चाहिए। विलंब के लिए पिताजी से क्षमा माँग लूँगा। [सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा-दृश्य

[स्थान—महाराणा रत्नसिंह का सैनिक-शिविर। महाराणा सैनिक-वेश में घूम रहे हैं।]

महाराणा—कितनी पीढ़ियों से मेवाड़ और मालवा का संघष चला आ रहा है। स्वर्गीय पिता श्री महाराणा सांगा ने न केवल मालवा बल्कि गुजरात के बादशाह को भी मेवाड़ के झंडे के आगे सर झुकाने के लिए मजबूर किया था। ऐसी कौनसी शक्ति थी जो मेवाड़ के आगे दर्प-पूर्ण दृष्टि से देख सकती? बयाना के युद्ध में एक राजपूत राजा के विश्वास-घात से स्वर्गीय पिताजी को जो पराजित होना पड़ा, उससे दूसरे राज्यों को हमारी शक्ति पर अविश्वास करने का अवसर मिला। इसीलिए आज मालवा के सूबेदार ने चित्तौड़ की तरफ़ लालच भरी आँखों से देखा है, किंतु, वह जान-लेगा कि महाराणा संग्राम के पुत्र की तलवार उनसे कम

तेज और कठोर नहीं है। [मेवाड़ के सेनापति का प्रवेश]

सेनापति—[अभिवादन करके] सेना तैयार हो चुकी है।

महाराणा—तो फिर कूच का डंका क्यों नहीं बजा ?

सेनापति—युवराज की प्रतीक्षा है। सेना के अग्रभाग का संचालन उन्हें सौंपा गया है किंतु वे अभीतक उपस्थित नहीं हुए।

महाराणा—बाप्पा रावल के वंशजों में आजतक ऐसा कोई कपूत पैदा नहीं हुआ जो रण-यात्रा पर जाने के समय देर से आया हो। कहीं कुमार शिकार को जाते समय शत्रुओं के घेरे में तो नहीं पड़ गये ?

सेनापति—आशंका तो मुझे यही हुई थी। रात को आवश्यक परामर्श के लिए जब मैं उनके शिविर में गया तो उसे खाली पाया। मेरा हृदय धड़का! मैंने तुरंत ही गुप्तचरों को भेजकर उनका पता लगवाया।

महाराणा—तो क्या वह रात भर शिविर से गायब रहे ? यह तो सैनिक-नियमों के विरुद्ध है सेनापति। मुझे विश्वास है कि राजकुमार जान-बूझकर सैनिक नियमों की अवहेलना नहीं करेंगे। मेरा हृदय धड़कता है सेनापति! वह अवश्य ही किसी विपत्ति में फँस गये हैं।

सेनापति—नहीं महाराणा! वे किसी विपत्ति में नहीं फँसे। केवल थोड़ा-सा रास्ता भूल गये हैं।

महाराणा—इसका मतलब ?

सेनापति—मतलब यही कि रणचंडी की उपासना के समय वे

वासना के विलास-मंदिर में दिल बहलाने गये हैं।

महाराणा—यह तुम क्या कहते हो ? सेनापति ! सीसोदिया वंश के किसी लाल के प्रति ऐसा लांछन लगाते समय तुम्हें डर नहीं लगा। यदि यह लांछन असत्य सिद्ध हुआ तो जानते हो इसका क्या दंड दिया जायेगा ?

सेनापति—महाराणा ! मेवाड़ का सेनापति भारत-गौरव सीसोदिया वंश की प्रतिष्ठा, शक्ति, यश, और साहस की पूरी इज्जत रखकर ही कोई शब्द अपने मुँह से निकालता है। यदि मेरा कथन झूठा हो तो मुझे प्राण-दंड दिया जाये। जिस सौंदर्य-मूर्ति की आराधना में कुमार ने गत रात व्यतीत की है उसे मैंने पकड़वाकर अभी बुलाया है। आप जान लेंगे कि मैं सत्य कहता हूँ या असत्य।

महाराणा—तुमको भ्रम हुआ होगा, सेनापति ! यदि यह बात सत्य हुई तो महाराणा संग्रामसिंह के पुत्र रत्नसिंह का न्याय-दंड अपने इकलौते बेटे, मेवाड़ के भावी महाराणा के ऊपर भी उसी निर्ममता से प्रहार करेगा, जिससे कि साधारण जन पर करता है। [राजकुमार का प्रवेश]

सेनापति—लीजिए, वे राजकुमार आ गये। आप इनसे पूछ सकते हैं कि रात में कहाँ रहे और इस समय विलंब से क्यों आये ?

महाराणा—कहो कुमार, तुम्हारे पास इस बात का क्या उत्तर है ?

[कुमार चुप रहते हैं।]

सेनापति—महाराणा ! इसका उत्तर कुमार अपने मुँह से देने में शायद लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। मैं इस प्रश्न का जीवित उत्तर सामने उपस्थित करता हूँ। (जोर से कहता है) गम्भीरसिंह ! [श्यामा के साथ गम्भीरसिंह का प्रवेश]

राजकुमार—सेनापति, तुम्हारा इतना साहस ! एक स्वतंत्र नागरिक को इस प्रकार पकड़वाकर बुलाने की जुरअत !

महाराणा—और कुमार रण-यात्रा के समय रमणी के रूपजाल में फँसे रहने की बुद्धि तुम्हें किसने दी ! तुम्हारा क्या नाम है, बेटी !

श्यामा—मुझे श्यामा नाम से पुकारा जाता है।

महाराणा—वह कौनसा कुल है जिसकी रूपवती पुत्री ने सीसोदिया कुल के एक नक्षत्र को अपनी छवि-मेघ-माला से संसार की आँखों से ओझल करने का प्रयत्न किया। तुम राजपूतनी हो ? [चारणी का प्रवेश]

चारणी—नहीं महाराणा ! यह भीलराज की कन्या श्यामा है।

सेनापति—तो श्यामा का अपराध अक्षम्य है। एक हीन कुल की कन्या का इतना साहस !

महाराणा—अवश्य, आज राजकुमार और श्यामा का भाग्य एक ही स्याही से लिखा जायेगा।

राजकुमार—पिताजी ! जहाँ तक मेरी आत्मा कहती है इस कुमारी ने कोई अपराध नहीं किया और मैंने भी इतना ही अपराध किया है कि नियत समय से कुछ देर में मैं यहाँ

पहुँच पाया हूँ। उसके लिए आप जो दंड देंगे वह स्वीकार करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।

महाराणा—कुमार, महाराणा तो अपनी प्रजा का आज्ञापालक सेवक है। आज प्रजा तुम दोनों को अपराधी मानती है। और मेरा न्याय-दंड कहता है कि तुम दोनों प्राणदंड के भागी हो।

श्यामा—महाराणा! मैं राजा के न्याय-दंड को नहीं जानती, मैं जाति और वंश की मर्यादाओं से भी अधिक परिचित नहीं, मैं बन में खेली और बड़ी हुई हूँ। बन में जो फूल मुझे अच्छा लगा है, उसे मैंने तोड़ लिया है। कभी महाराणा का न्याय-दंड मेरे मार्ग में बाधक नहीं हुआ।

महाराणा—तुम क्या कहती हो, श्यामा?

चारणी—महाराणा, अभी तक चारण और चारणी वीर पुरुषों के गुण गाने और सैनिकों को मरने-मारने के लिए उत्तेजित करने को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते रहे हैं। किन्तु हमारे भी हृदय है और मनुष्य के हृदय को समझने का थोड़ा सा ज्ञान हमें मिला है। इसमें संदेह नहीं कि श्यामा से भी भूल हुई है और राजकुमार से भी, किंतु भूल क्या हुई है इस विषय में संसार को भ्रम न रहे ऐसा उपाय होना चाहिए। सेनापति! आप बता सकते हैं कि श्यामा से क्या भूल हुई है और राजकुमार ने क्या अपराध किया है?

सेनापति—श्यामा से यह भूल हुई है कि उसने हीन कुल में जन्म

लेकर भी राजपूतों के उच्चतम वंश के साथ स्नेह-सूत्र बाँधने का प्रयत्न किया है। और राजकुमार से यह अपराध हुआ है कि उन्होंने अपने कुल के गौरव और उच्चता को एक हीन कुल की युवती के चरणों पर चढ़ा दिया।

चारणी—यही तो भ्रम है। आप भूलते हैं सेनापति और महाराणा आप अपराधी को दंड देने तो चले हैं, लेकिन आपको यह पता नहीं है कि इनका वास्तविक अपराध क्या है। न्याय-आसन पर बैठते समय आप न महाराणा हैं, न आपका किसी उच्चकुल में जन्म हुआ है। न्याय-मन्दिर का देवता एक निष्पक्ष, निर्विकार, जाति-कुल-हीन, ममता-माया के आवरण से मुक्त, यश-अपयश के परे रहनेवाला मनुष्य है। महाराणा यदि आप इस समय इन दोनों को दंड देंगे तो संसार यही समझेगा कि मनुष्य का मनुष्य से प्रेम करना पाप है। मैं नहीं जानती कि एक राजपूत का एक भीलनी से प्रेम करना कोई अपराध है और एक भीलनी का एक राजपूत के साथ स्नेह-सम्बन्ध जोड़ना दुस्साहस है। हमने नीच और ऊँच की भावनाएँ प्राणों में पालकर अपने देश को सैकड़ों टुकड़ों में बाँट लिया है। मैं आपसे पूछती हूँ, यदि भीलों को आप अपने समान अधिकार देने को प्रस्तुत नहीं तो क्यों वे निरन्तर अपमान के बाण प्राणों पर झेलने के लिए मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों की बलि दें? क्यों हज़ारों की संख्या में वे आपकी सेना में भरती

हों ? महाराणा, केवल वंश की उच्चता के दंभ को राजी करने के लिए इन दो प्राणों की बलि चढ़ाने की आवश्यकता नहीं। मैं आज आपसे भीख माँगने आयी हूँ! वंशाभिमान के विरुद्ध प्रेम की अर्ज़ी पेश करने आयी हूँ। महाराणा! श्यामा और राजकुमार को विवाह करने का अधिकार मिलना चाहिए।

महाराणा—तुम ठीक कहती हो, चारणी! सेनापति! जाओ आज रण-यात्रा स्थगित रखो। आज मेवाड़ के युवराज का भीलराज की कन्या से विवाह होगा।

सेनापति—आपकी आज्ञा सर आँखों पर, किन्तु सैनिक अनुशासन भी आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता है। ऐसा जान पड़ता है कि न्यायाधीश पर पिता ने विजय पा ली है।

महाराणा—नहीं सेनापति! तुम भूल करते हो। न्यायाधीश अपना कार्य करेगा; किन्तु उसके सामने प्रेम की जो अर्ज़ी आयी थी उसका पिता के रूप में नहीं, न्यायकर्ता के रूप में मैंने फ़ैसला सुनाया है और सैनिक अनुशासन की अर्ज़ी का फ़ैसला कल सुनाया जायेगा। अच्छा, अब हम लोग बिदा होते हैं। [सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—सैनिक-शिविर के पास काली का मंदिर। राजकुमार और श्यामा का एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए प्रवेश]

कुमार—श्यामा, पानी के दो बुलबुलों की तरह हमारा-तुम्हारा मिलन है। संसार के महासमुद्र में दो दिशाओं से दो बुलबुले उठे। एक दूसरे की तरफ बढ़े—और एक होकर अब दो नहीं हो सकते।

श्यामा—किन्तु, अभी तक महाराणा के न्याय की तलवार हमारे सिर पर लटक रही है।

कुमार—मेवाड़ का न्याय-दण्ड बहुत कठोर है। आज महाराणा क्या फ़ैसला करेंगे, यह मैं पहिले से ही जानता हूँ।

श्यामा—हम इस संसार में भूल से ही आ गये। हमारी वीणा के स्वर संसार के कोलाहल में नहीं मिल सके। हम यहाँ के राज-नियमों से विद्रोह करके अपनी स्वासों को सुरक्षित नहीं रख सकते। [नेपथ्य में गान]

किसने भावी को पहचाना !

जो बादल बरसाते पानी
जिससे पाती भूमि जवानी
वे भी बन जाते तूफ़ानी

खेल उन्हें है वज्र गिराना।
किसने भावी को पहचाना !

वह प्रशांत सागर सोता है,
किंतु, अशांत अभी होता है,
वह जहाज़ जीवन खोता है,
लहरें हैं यम का मुसकाना।
किसने भावी को पहचाना!

नभ की यह सिंदूरी रेखा,
बनती निशि में काले लेखा,
जग ने कब अपना जग देखा,
छिपा हँसी में अश्रु गिराना।
किसने भावी को पहचाना!

श्यामा—चारणी बहिन आ रही है! चारणियों के दिल में भी प्रेम की हिमायत करने की भावना है, यह पहिली बार ही देखने में आया। यह जो पूर्णिमा से भी अधिक उज्ज्वल, शराब से भी अधिक उन्मादक और अमृत से भी अधिक जीवन-दायिनी रात्रि हमें प्राप्त हुई है, इसका श्रेय चारणी बहिन को ही है। हमारा प्रेम जो अन्धकार में मुँह छिपाकर सिसक रहा था, वह ऊषा के सुहाग भरे प्रकाश में खुलकर गा सका है। [गाते गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—किसने भावी को पहचाना।

चारणी का प्रेम के दीवानों को संपूर्ण हृदय से आशीर्वाद।

श्यामा और कुमार—आदरणीया चारणी के चरणों में हमारा प्रणाम।

चारणी—श्यामा ! तुम मेवाड़ के भाग्याकाश में विनाश की तारिका बनकर आयी हो। तुम जितनी सुन्दर हो, तुम्हारी आभा में उतनी ही ज्वाला है। युग-युग के अन्ध-विश्वासों को लात मारकर, वंश-मर्य्यादा की अवहेलना करके, महाराणा ने अपने हाथ से एक भीलनी की ओढ़नी से राजकुमार के उत्तरीय का छोर बाँध दिया है, वह एक साधारण-सी घटना नहीं है। आज जिस रूढ़िवाद का सर्प भीतर ही भीतर फुफकार रहा है उसके विष से श्यामा का सुहाग कितने दिन तक अम्लान रह सकता है यह विधाता के सिवाय कोई नहीं जानता।

श्यामा—बहिन, मेरा जीवन तब प्रारम्भ हुआ था, जब कि मैंने पहिली बार कुमार को देखा था। मेरे जीवन की जवानी तब आयी थी जबकि हमारा गठ-बंधन हुआ था और मेरा जीवन तब समाप्त हो गया जबकि हमारी साँसे एक दूसरे को छूने लगीं। अब श्यामा समाप्त हो चुकी, जो कुछ शेष है वह कुमार की छाया है। श्यामा तो एक प्रलय का झोंका लेकर आयी थी और उस झोंके से राजमहलों का अभिमान हिलाकर चले जाने में ही उसकी स्वाभाविकता है। एक क्षण के लिए भी मुझे संसार ने बाप्पा रावल के वंशज की अर्धाङ्गिनी माना है, अपने इस विजयोल्लास के प्रकाश में जीवन की शेष अँधेरी रातें मैं संतोष के साथ व्यतीत कर दूँगी।

[महाराणा और सेनापति का प्रवेश। श्यामा और राजकुमार महाराणा के चरण छूते हैं]

महाराणा—यशस्वी हो बेटा। तुम्हारी कीर्ति अमर हो श्यामा! न्यायाधीश बनने के पहिले पिता का आकुल हृदय अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने हृदय के सम्पूर्ण बल से आशीर्वाद देता है। मेवाड़ के इतिहास में तुम दोनों नक्षत्रों के समान चमकोगे। अच्छा! अब तुम दोनों की पेशी मेवाड़ के महाराणा के न्यायालय में होगी। सेनापति! बोलिए राजकुमार के विरुद्ध तुम्हारा क्या अभियोग है?

सेनापति—महाराणा! वह क्षणिक ज्वार था। मेरा राजकुमार के विरुद्ध कोई अभियोग नहीं। जिस हृदय में कल सुहाग का प्रकाश हुआ है—वहाँ मैं शोक का अन्धकार नहीं फैलाना चाहता। जहाँ पर कल आनन्द की भैरवी बजी है, वहाँ वेदना का विहाग नहीं छिड़वाना चाहता। जो होना था हो चुका; मुझे जो भ्रम था दूर हो चुका। मैं कुमार से अपनी धृष्टता की क्षमा चाहता हूँ।

चारणी—किन्तु देश ने अभी तक अपना अभियोग वापिस नहीं लिया। वंश और जाति का श्यामा के विरुद्ध जो अभियोग था उसका फ़ैसला श्यामा के पक्ष में हो चुका है और वह उसका पुरस्कार पा चुकी है। किन्तु जाति और वंश से भी बड़ी चीज़ हमारी जन्म-भूमि है और उस जन्म-भूमि का युवराज के विरुद्ध यह अभियोग है कि

उसने प्रेम को कर्तव्य से ऊँचा स्थान दिया है, उसने प्रेयसी को जन्म-भूमि से ऊँचा माना है, रण-यात्रा पर निश्चित समय पर आने में विलम्ब किया है। महाराणा देश-द्रोही को जो दण्ड दिया जाता है क्या कुमार उसके भागी नहीं?

महाराणा—अवश्य! क्यों कुमार तुम इस अभियोग को असत्य सिद्ध कर सकते हो? तुम्हारा जो मुख्य गवाह था वह तुम्हारे विरुद्ध हो गया है।

कुमार—मेरा गवाह पक्ष और विपक्ष की सीमाओं के परे है। उसने सत्य को सामने रख दिया है और अपराधी दण्ड सहने के लिए प्रस्तुत है।

महाराणा—तो फिर मैं तुम्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा देता हूँ। काँपते क्या हो सेनापति, तुम्हें आश्चर्य होता है कि एक पिता के मुँह से अपने पुत्र के लिए प्राण-दण्ड की आज्ञा कैसे निकल सकी?

सेनापति—हाँ? महाराणा यह आश्चर्य की बात है ही। युवराज मेवाड़ के भावी महाराणा हैं। और महाराणा के दूसरा और कोई पुत्र भी नहीं है। युवराज ने आपके साथ और मेरे साथ रहकर क्षत्रियत्व का पूर्ण तेज अनेक युद्धों में प्रकट किया है। आप अपने भाई विक्रमाजीत और उदयसिंह को भी जानते हैं। आपके अनुज विक्रमाजीत वासना के पुजारी हैं और उदयसिंह शिशु। उनके हाथों में मेवाड़ का भविष्य उज्ज्वल न रह सकेगा। देश के आशा-केन्द्र युवराज के प्राणों की भिक्षा मेवाड़ का सेनापति महाराणा से माँगता है। मेवाड़ के महा-

राणा की ओर से न्यायाधीश महाराणा के आगे अनुरोध करता हूँ कि कुमार को क्षमा किया जाये। मैं नव-विवाहिता—श्यामा की ओर से उसके सुहाग की भीख माँगता हूँ।

महाराणा—न्यायाधीश! मेवाड़ के सेनापति, मेवाड़ के महाराणा, और नवविवाहिता नारी के अनुरोध को न्याय के विरुद्ध जाने के लिए उपयुक्त कारण नहीं समझता। मेरी आज्ञा का पालन होना ही चाहिए। भविष्य में मेवाड़ का प्रत्येक मनुष्य जान ले कि देश की स्वाधीनता के लिए जिसकी पुकार हो, उसी समय उसे आना पड़ेगा, नहीं तो उसे यही दण्ड भोगना पड़ेगा जो कि मेवाड़ के युवराज ने हँसते-हँसते स्वीकार किया है। कहो राजकुमार, तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो?

राजकुमार—यह मेरा सौभाग्य है।

महाराणा—तुम काली की मूर्ति के सामने खड़े हो जाओ।

[कुमार मूर्ति के सामने जाकर खड़े होते हैं। श्यामा भी उनके बगल में जाकर खड़ी होती है]

चारणी—श्यामा तुम कहाँ जाती हो! महाराणा ने केवल राजकुमार की मृत्यु की आज्ञा दी है। तुम्हें अभी इस दुनिया में ही रहना होगा। मेवाड़ का न्याय-दंड आज तीन-तीन प्राणों का भूखा नहीं है। तुम्हें मृत्यु के पथ पर कुमार को अकेला ही जाने देना पड़ेगा। मनुष्य का फ़ैसला चाहे हम न मानें किन्तु विधाता के भाग्य-विधान के विरुद्ध कुछ भी करने का हमें अधिकार नहीं है।

[श्यामा की आँखों में आँसू आते हैं]

चारणी—अभी तुम हँसती थीं ! राजकुमार को प्राणों का दण्ड सुनाया गया, तब भी तुम्हारी आँखों की बिजली ज़रा भी मंद नहीं हुई थी। अब आँखों के बादल बरसने क्यों लगे ?

श्यामा—विधाता का न्याय-मंदिर मनुष्य के न्याय-मंदिर से भी अधिक निष्ठुर और कठोर है।

महाराणा—सेनापति यह लो मेरी तलवार।

[सेनापति को तलवार देता है]

महाराणा—कुमार काली के आगे अपना मस्तक झुकाओ। भवानी की प्यासी जीभ तुम्हारा खून माँग रही है।

[कुमार भवानी के आगे अपना सिर झुकाते हैं। श्यामा चीत्कार करके चारणी के चरणों में गिर जाती है]

महाराणा—सेनापति ! बढ़ो और देवी के चरणों में यह बलि चढ़ा दो। इतनी बहुमूल्य बलि चढ़ाने का सौभाग्य आज तुम्हें मिल रहा है। आज तुम्हारे जैसा भाग्यवान कौन होगा ? जाओ मेरी आज्ञा का पालन करो।

सेनापति—महाराणा ! ऐसा निष्ठुर कार्य...

महाराणा—सेनापति ! अनुशासन भंग करने का दण्ड तुम जानते हो।

[सेनापति कुमार के पास पहुँचते हैं और तलवार उठाते हैं]

पटाक्षेप
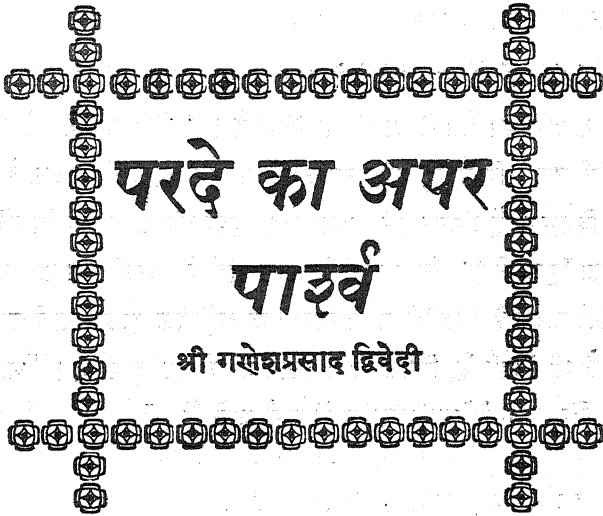
परदे का अपर
पार्श्व
श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

[पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी के एकांकी नाटकों का संग्रह 'सुहागबिंदी' नाम से इण्डियन प्रेस ने प्रकाशित किया है। द्विवेदी जी ने थोड़े से ही एकांकी नाटक लिखे हैं, परंतु उन सबमें उत्कृष्ट एकांकी नाटकों के सभी गुण विद्यमान हैं। आप बड़ी सरल और हृदयग्राहिणी भाषा लिखते हैं। आपका 'सुहागबिंदी' शीर्षक एकांकी नाटक हिंदी में अपने ढंग का एक ही एकांकी नाटक है। द्विवेदी जी ने नाटकों के अतिरिक्त कुछ समालोचनात्मक पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका हिंदी-संसार में आदर हुआ है। आज-कल आप हिंदुस्तानी ऐकेडमी, प्रयाग में कार्य करते हैं।]

प्रथम दृश्य

समय सायंकाल ६ बजे

[नये, परन्तु सफल वकील रमेश बाबू के आफिस का कमरा। कमरे के दो ओर मोटी काली जिल्दोंवाली प्रायः एक ही आकार की पुस्तकों से भरी हुई बड़ी-बड़ी अलमारियाँ लगी हुई हैं और सुनहले अक्षरों में शायद पुस्तकों के नाम लिखे हुए हैं। बीचोंबीच एक बड़ा-सा सेक्रेटरियट टेबिल रक्खा हुआ है, जिस पर एक में बहुत-सी फाइलें भरी पड़ी हैं और भी बहुत-से कागज-पत्र प्रायः अस्त-व्यस्त रूप से उस पर पड़े हैं। टेबिल के एक ओर एक बड़ा-सा रिवाल्विंग अलमेरा लगा हुआ है और उसमें भी रंग-बिरंगी जिल्दोंवाली मोटी-मोटी बृहद् आकार की बहुत-सी पुस्तकें रखी हैं। स्टेज़ के सामने टेबिल के पीछे एक एडिटोरियल कुर्सी पर एक सज्जन बैठे हैं। इनकी अवस्था लगभग ३५ वर्ष, शरीर का

आकार मझोला और रंग काफी गोरा है। आप सफेद पेंट और हरा ब्लेज़र कोट पहिने हुए हैं। टेबिल पर एक ओर एक टेनिस रैकेट रखा हुआ है। मालूम होता है, आप अभी-अभी टेनिस खेल कर लौटे हैं। शरीर भी आपका कुछ इस तरह का सुगठित और सुडौल-सा है, जिससे आप एक रियाज़ी खिलाड़ी जान पड़ते हैं। चेहरे का भाव यद्यपि अस्वाभाविक रूप से कुछ गंभीर है, पर आपके भरे हुए और कुछ खिले-से ओठ और मांसल कपोल साफ़ बतलाते हैं कि आप में अभी नवयुवकोचित रसिकता और मिठास का नितांत अभाव नहीं हो पाया। आँखें काफ़ी धँसी हुई और स्थिर होने पर भी आप कोरे दार्शनिक या वणिक ही नहीं मालूम होते। उनके कोनों में कभी-कभी एक सुश्री चंचलता दौड़कर शांत हो जाती है जिससे असाधारण प्रतिभा या निराश प्रेम दोनों ही का सामंजस्य-सा झलकता है। आपके बगलवाली कुर्सी पर एक दूसरे नवयुवक सज्जन बैठे हैं। यह भी टेनिस की पोशाक में हैं; फ़र्क इतना ही है, आपका ब्लेज़र गहरे नीले रंग का है, जिसका एकमात्र बटन खुला हुआ है। नीचे सफेद और गहरे लाल रंग के बार्डरवाला एक पुलओवर दिखाई पड़ रहा है, जिसका बेतुकापन साफ़ कह रहा है कि वह घर के किसी और नौसिखिए हाथ की करामात है। इनका शरीर तो लंबा और दुबला है पर कलाई काफ़ी चौड़ी है। इनके बैठे गाल, धँसी आँखें और निस्तेज रंग एक ही कहानी कहते हैं—या तो यह कोई कम से कम पाँच सेट सिंगल्स खेलनेवाले व्यवसायी खिलाड़ी हैं या कोई क्रानिक केस (दीर्घ-रोगी)। फिलहाल आप अपने हाथवाले रैकेट की तांत की बड़े गौर से परीक्षा-सी कर रहे हैं। यह रमेश बाबू के बाल्य-बंधु रामेश्वरसिंह हैं।]

रामेश्वरसिंह—[बल्ले की गटों को सुरमंडल बाजे की तरह छेड़ कर एक विचित्र झंकार-सी पैदा करते हुए] अँगरेजी गटों में एक खास खराबी यह होती है कि ये इंडियन कंडीशंस को सूट नहीं करते।

रमेशचंद्र—बात यह है कि आप लोग अँगरेजी गट [तांत] का इस्तेमाल और उसकी हिफ़ाजत नहीं जानते। लास्ट इयर मैं सीज़न भर अँगरेजी गट से खेला [अपने बल्ले की गट को दबाकर बजाते हुए] और अभी तक ठीक हालत में है।

रामेश्वरसिंह—हो सकता है, मगर आप खेलते ही कितना हैं। किसी दिन कोई आया और वकालत की नजीरों और मिसलों में से निकालकर हजरत को क्लब तक घसीट ले गया तब तो आपके बल्ले को प्रेस में से निकालने की नौबत आती है। कहाँ तो कुछ बरस पहिले यह हाल था कि ढाई बजते न बजते हुजूर नेट पर हाजिर हो जाते थे। मार्कर भी अक्सर तब तक नहीं पहुँच पाता था। कभी-कभी तो माळी खाना-वाना खाकर एक चिलम तंबाकू भी नहीं पीता था कि तुम्हारी डांट पड़ जाती थी—बदमाश ने अभी तक नेट (जाळ) नहीं खड़ा किया।

रमेशचंद्र—[उदासी-मिश्रित गंभीरता से] वे दिन और थे।

रामेश्वर—[ईषत् हास्य के साथ] आजकल के इस युग में अतीत स्त्री-प्रेम ने किसी के जीवन पर अगर स्थायी प्रभाव डाला है तो तुम हो।

रमेशचंद्र—[कुछ बनावटी रोष से] बिलकुल नहीं, तुम लोग झूठ मूठ मुझे बदनाम करते हो। आज छः-छः बरस होने को आए, किसी ने उर्मिला का नाम भी मेरे मुँह से सुना है या अपना काम छोड़कर किसी की याद में स्वप्नराज्य में विचरण करते ही देखा है ?

रामेश्वरसिंह—[कुछ देर गौर से रमेशचंद्र के मुख का भाव परख कर अति गंभीर भाव से] हमने माना कि जब से उर्मिला की शादी हुई और उसने इस बे-वफ़ाई से तुम्हारे संपूर्ण प्रेम को ठुकराकर उस ग्रेजुएट जमींदार को स्वीकार किया, तब-से तुमने कभी उसका नाम भी नहीं लिया ; उसकी चिट्ठियों का कभी जवाब भी नहीं दिया और न उससे मिलना ही पसंद किया। हालाँकि यह सभी जानते हैं कि उसने तुमसे एक बार फिर मिलने की चेष्टा में कोई बात उठा नहीं रखी और बराबर चिट्ठी भेजती गई—मगर······।

रमेशचंद्र—मगर क्या ? शुरू में तो मैंने दो-एक चिट्ठियाँ उसकी पढ़ी भी थीं, फिर तो बिना पढ़े ही जला दिया करता था।

रामेश्वरसिंह—मुझे सब मालूम है। उन दो-एक चिट्ठियों को तुमने मुझे भी पढ़कर सुनाया था, और मेरे हजार मना करने पर भी तुमने कई चिट्ठियाँ मेरे सामने जलाईं—मगर···

रमेशचंद्र—[अर्थपूर्ण दृष्टि से रामेश्वरसिंह का भाव टटोलते हुए] फिर वही मगर; आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ?

रामेश्वरसिंह—[लापरवाही से] मतलब-वतलब कुछ नहीं, चकमा।

किसी और को देना। [यकायक बहुत गंभीर होकर] तुम ज्यादा-से-ज्यादा यह कह सकते हो कि उससे अब घृणा करते हो—अपने शरीर के रक्त की प्रत्येक बूँद से जैसे उसे कभी प्यार किया था, वैसे ही अब घृणा करते हो। बस, अगर तुम यह कहना चाहते हो कि तुम उसे भूल गए या अपने मन से तुमने उसे एकदम अलग कर दिया तो मैं तुमको एक बड़ा हिपोक्रिट (बननेवाला) कहूँगा। तुम्हारे प्रत्येक रोम पर अब भी उसका वैसा ही अधिकार है—यद्यपि इस अधिकार की क्रिया अब दूसरे रूप में हो रही है। तुम्हारा एक-एक दिन का प्रत्येक कार्य अब भी उससे प्रभावित है। पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक वेग से प्रभावित है, सिर्फ उसका पहलू बद……।

रमेशचंद्र—[एक अत्यंत करुण और म्लान मुस्कुराहट के साथ] रामेश्वर जरा अपने को और तो स्पष्ट करो, शायद तुम मानव-हृदय के एक कोमलतम तार को छेड़ने की चेष्टा करने जा रहे हो।

रामेश्वरसिंह—[उसी भाव से] अधिक स्पष्ट करना व्यर्थ है। मेरा मतलब तुम खूब समझ गए हो। तो भी इतना याद रखो [रामेश्वर के खोखले गाल यकायक कुछ तमतमा उठते हैं और आँखें दीप्त-सी हो उठती हैं] वास्तविक प्रेम कभी मिटता नहीं, चाहे उसका पात्र या पात्री जघन्य-से-जघन्य आचरण क्यों न करे। सिर्फ एक प्रकार का पदपरिवर्तन-मात्र हो

जाता है। पट के दोनों ही ओर जीवन की सामग्री है और दोनों ही का दर्जा बराबर का है। फर्क इतना ही है कि एक ओर अगर प्रेम के दृश्य या करिश्मे हैं, तो दूसरी ओर घृणा के। एक ओर अगर प्रेम है, तो दूसरी ओर घृणा। पहिला जितना चित्रविचित्र और गहरा होता है, दूसरे को भी ठीक वैसा ही होना पड़ेगा। यह असंभव है कि रोशनी पड़ने पर रंगीन परदे का एक पार्श्व चित्रित और दूसरा बिलकुल कोरा दिखलाई पड़े। दूसरे शब्दों में, यह असंभव है कि जिसे सचमुच प्यार कर चुके हों, उसके प्रति किसी भी परिस्थिति में एकदम निर्विकार या निर्लिप्त हो जायँ। और, यदि ऐसा हो जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि वह सचमुच प्यार या प्रेम नहीं था; कोई और ही चीज रही होगी; आप मुफ्त में प्रेम का नाम बदनाम कर रहे हैं।

रमेशचंद्र—[विस्फारित नेत्रों से अपने मित्र की ओर एकटक देखते हुए, पर एक साथ ही कुछ उपहास के साथ] शाबास! यह तो तुम प्रेम की एक अच्छी खासी फिलासफी बघार गए। मगर तुम्हारे तर्कों में सिर्फ एक कमजोर कड़ी है। तुम्हारी बातें ठीक हैं, पर ऐसा तभी होता है, जब दोनों ओर से तल्लीनता की मात्रा किसी समय समान रही हो। पर मुझे हुआ धोका, मैं सोते से चौंकाया गया। मुझे बेवकूफ बनाया गया था, और सो भी बड़ी बे-रहमी के साथ।

रामेश्वरसिंह—[दृढ़ता से] नहीं, तल्लीनता या अनुराग जिसे

कहते हैं, वह यकतरफा हो ही नहीं सकता। तुम्हें धोका दिया समाज ने, या परिस्थितियों ने, या मनुष्यता ने। चाहे किसी ने दिया हो, पर उसने नहीं। अगर जिंदा रहे तो कभी इसका सबूत पा लोगे।

रमेशचंद्र—[उठते हुए, बनावटी आश्चर्य के साथ] ओफ ओह! रोमांस का इतना पका-पकाया अनुभव! हो पुराने खिलाड़ी! [यकायक कुछ गंभीर होकर] मगर इतना हमसे भी सुन लो। अगर प्रेम में इन चीजों का—जिनका नाम तुम अभी गिना गये हो, यानी समाज, परिस्थितियाँ और मनुष्यता का—बाँध तोड़ने की शक्ति नहीं तो वह प्रेम नहीं, छल है। खैर, देखा जायगा।

रामेश्वरसिंह—अब यहाँ से दूसरा सवाल पैदा हो जाता है। मगर मैं अपनी पहली बात पर अड़ा रहूँगा और जिंदा रहा तो कभी दिखला दूँगा कि मैं सही था। खैर, अब यह बहस छोड़ो। जा कहाँ रहे हो? आज तो क्लब से सीधे सिनेमा चलने की ठहरी थी न? तुमने कहा था, जरा घर हो लें फिर चलेंगे, भूल गए [मुसकुराता हुआ] इतनी जल्दी?

रमेशचंद्र—[भूल स्वीकारवाली मुस्कुराहट के साथ] अरे हाँ! अच्छा तुम जरा मुहम्मदहुसेन की गाड़ी लेकर बरसाती में आने को कहो; मैं इसी बीच में जरा चेंज किये [कपड़े बदले] लेता हूँ।

रामेश्वरसिंह—ये लो, इतने एब्सेंट माइंडेड [भुलक्कड़] अरे

क्लब से आकर तुम्हीं ने न उसे बरसाती में रुकवाकर कहा था 'जाना मत, अभी बायस्कोप चलना है' और भूल गए।

रमेशचंद्र—[असमंजस के साथ मुसकुराकर] सच? अच्छा तो बैठो अभी आया। [रमेश का बगल के कमरे में सवेग प्रस्थान]

रामेश्वरसिंह—[जाते हुए रमेश को लक्ष्य करके कुछ झुँझलाहट से गर्दन नीची करते हुए दार्शनिकों-वाली एकांगी मुस्कुराहट के साथ] हुँः! दावा तो यह कि उसे मन से निकाल दिया, पर हालत यह।

[परदा]

द्वितीय दृश्य

समय प्रातः ९ बजे

[रमेश बाबू अपने उसी आफिसवाले कमरे में मिसलों, क़ानूनी किताबों और कचहरी के काग़ज़ात के बीच में बैठे हुए एकाग्रचित्त से कोई टाइप किया हुआ पुलिंदा पढ़ रहे हैं और मोटी लाल पेंसिल से कहीं-कहीं निशान या लकीर खींचते जा रहे हैं। स्टेज के दाहिनी ओरवाले दरवाज़े से नाक की नोक पर ऐनक लगाये हुए एक कुबड़ा मुंशी बीच-बीच में कुछ काग़जात और रख जाता है। इसी समय एक वृद्ध कमरे में प्रवेश करते हैं। आपकी उमर साठ से कम न होगी। पहनावे से पुराने ढंग के रईसों के गुमाश्ते मालूम होते हैं। एक रुईदार चुस्त पायजामा काले रंग का और उसी की अचकन, सिर

पर एक सफ़ेद पगड़ी और हाथ में एक छड़ी। मगर शरीर की अकड़ अब भी ज़वानों की तरह है और चाल भी दृढ़ गंभीर। यों तो 'क्लीन शेव' यानी दाढ़ी-मूँछ नदारद हैं, पर चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि कई दिन से हजामत नहीं बनी। कुछ गंभीर चिंता तथा आशंका के भाव भी साफ हैं। कमरे में आते ही जिस भाव से आप बैठकर जल्दी-जल्दी जेब से कुछ काँपते हाथों से एक ख़त ढूँढ़ निकालते हैं उससे आप काफ़ी अस्त-व्यस्त और परेशान मालूम होते हैं। वकील साहब काम में इस बेतुके विघ्न का मानों कुछ अर्थ न समझकर एक आश्चर्य की दृष्टि से, पर शांत भाव से, वृद्ध की सब हरकतें देखते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि रमेश बाबू के आफिस रूम में यह अपने ढंग का शायद प्रथम दृश्य है और वह अभी इसका अर्थ ही नहीं समझ रहे हैं।

रमेशचंद्र—[वृद्ध को इस परेशानी के साथ दोनों जेबों में ख़त टटोलते देखकर कुछ कठोर मुद्रा के साथ] आपको दरवाज़े पर कोई आदमी नहीं मिला?

वृद्ध—[पहले मानो सुना ही नहीं, पर इसी बीच ज़ेब में ख़त पाकर उसे दाहिने हाथ में लेकर और यह देख कि यह वही ख़त है जिसे वह खोज रहे थे, कुछ प्रकृतिस्थ होकर, कुछ क्षमा-याचना के भाव से] माफ़ कीजिएगा, आपके मुंशी जी ने पहले ही मेरा कार्ड माँगा था, पर मैं इतनी जल्दी में था कि इतनी देर भी बर्दाश्त नहीं थी। ख़ैर, ज़रा यह ख़त तो देखिए।

रमेशचंद्र—[एक अत्यंत क्रूर और हृदयहीन उदासीनता के भाव से उनकी ओर देख लापरवाही से खत को हाथ में लेते हुए] खैर आप हैं कौन और कहाँ से तशरीफ़ लाये हैं ?

वृद्ध—[जरा आश्चर्य से] मैं—मुझे लोग शिवराम दुबे कहते हैं। अधिकतर लोग 'दुबे जी' कहकर ही पुकारते हैं। मैं यहाँ के जमींदार बाबू भगवानदास जी का, जो यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर भी हैं, गुमाश्ता हूँ। खैर, यह चिट्ठी तो पढ़िए, उसीसे आपको सब मालूम हो जायगा।

रमेशचंद्र—[मानों वृद्ध की बेहूदगी को ला-इलाज मानकर ओठ के एक कोने को टेढ़ाकर नैराश्य के भाव से सिर हिलाते हुए लिफाफा खोलते हैं और एक दृष्टि में ही पूरा खत पढ़कर वृद्ध के आगे फेंककर] आप गलत जगह आये हैं, खत मेरा नहीं है।

दुबे जी—[मानो आकाश से गिरकर कुछ देर आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देख लेने के बाद] ऐसा भला कैसे हो सकता है ? आप ही न बाबू रमेशचंद्र......

रमेशचंद्र—हाँ, मेरा नाम जरूर यही है, पर मेरा खयाल है कि आपको इसी नाम के किसी डाक्टर के पास भेजा गया है। मैं वकील हूँ।

दुबे जी—[जरा सकपकाकर] जी, मैं वकील रमेशचंद्र के पास ही भेजा गया हूँ और ठीक जगह ही आया हूँ।

रमेशचंद्र—[एक उपेक्षा की मुस्कुराहट के साथ कंधे उचकाते हुए] आप मेरे पास खुशी से आइए, पर साथ में मुकदमे के

ज़रूरी काग़ज़ात लाना कभी मत भूलिएगा। हो सका तो मुकदमा जिता दूँगा।

दुबे जी—[कुछ अवाक् से] आपने—क्या—अच्छा इस चिट्ठी को पढ़कर आपने क्या समझा ?

रमेशचंद्र—[फिर एकाग्रचित्त से सामनेवाला काग़ज़ देखने लग जाते हैं और पेंसिल हाथ में लेकर मार्क करने लगते हैं। कुछ क्षण इसी अवस्था में रहते हुए] चिट्ठी से मैंने यही समझा कि कोई प्रोफेसर भगवान बाबू हैं और उन्होंने मुझे बुला भेजा है, इसलिए कि उनकी बीबी की हालत ख़राब है। [यकायक सिर ऊपर उठाकर] अगर उनकी बीबी को कोई 'विल' या दानपत्र वग़ैरह बनवाना हो तो वैसा कहिए मैं चलने को तैयार हूँ। नहीं तो मैं आपको किसी डाक्टर के यहाँ ले जाने की सलाह दूँगा।

दुबे जी—[जिनकी मुद्रा क्रमशः कठोर होती जाती है और चेहरे पर आश्चर्यमिश्रित घृणा के भाव स्पष्ट से स्पष्टतर होते जाते हैं।] माफ कीजिएगा। यह मैंने आज समझा कि 'वकील' और 'मनुष्य' दोनों भिन्न-भिन्न प्राणी हैं। पर इतना आपसे भी कहूँगा कि बहूजी कल रात से ही प्रलाप में आपका नाम बराबर ले रही हैं और सबसे कह रही हैं, रमेश बाबू वकील को एक बार बुला दो। उनसे एक बार माफी माँगना है···वगैरह-वगैरह। पूछने पर आपका नाम और यही पता बताया; क्योंकि उनके सिवा और कोई वहाँ

आपको जानता भी नहीं। आज चार-पाँच दिन से प्रलाप में बराबर आपका ही नाम उनकी ज़बान पर है। पहले तो बाबू ने इस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया, पर कल रात को उन्होंने आपके लिए बहुत जिद की। [रमेशचंद्र धीरे-धीरे हाथ की पेंसिल एक ओर रख वृद्ध की बातों में कुछ वास्तविक दिलचस्पी लेने लगते हैं] बाबू ने इस पर जरा जोर देकर पूछा कि 'अच्छा तुम्हारे रमेश बाबू हैं कौन, क्यों उन्हें इस वक्त इतना याद कर रही हो, वह तुम्हारे कोई रिश्तेदार.........या क्या हैं, आदि-आदि।' इन प्रश्नों पर यकायक बहूजी को मानो होश आ गया। वह यह कहती हुई उठ बैठीं कि 'वही तो हमारे सब कुछ हैं। जानना चाहते हो वह हमारे कौन हैं? अच्छा सुनो'......इस पर बाबू ने इशारे से हम लोगों को कमरे से बाहर चले जाने को कहा और फिर भीतर से दरवाजा बंद कर लिया। उनका चेहरा उस वक्त जाने कैसा अजीब-सा हो रहा था। सुबह होते ही उन्होंने मुझे बुलाकर यह खत देकर भेजा और कहा कि आपको जैसे हो, फौरन साथ लेकर आना। वह उस समय अस्वाभाविक रूप से शांत और गंभीर हो रहे थे।

रमेशचंद्र—[जिनके चेहरे पर क्रमशः उत्कंठा और दिलचस्पी के भाव बढ़ते ही जा रहे थे] ठीक है। अच्छा, एक बात और, आप अपने इन बाबू साहब की बीवी का नाम बता सकते हैं?

दुबे जी—[उसी झोंक में] क्यों नहीं, उनका नाम है उर्मिला देवी और वह बी० ए० तक पढ़ी भी हैं। और······

रमेशचंद्र—[हाथ के इशारे से मनाकर, चेहरे पर मानों विजय-लाभ का एक गंभीर संतोष का-सा भाव लाते हुए, धीरे से दराज़ में से 'क्रायवन ए' सिगरेट का एक लाल रंग के टीन का चौड़ा डिब्बा निकालकर इतमीनान से एक सिगरेट जलाते हैं। दिया-सलाई का 'स्टैंड' उनके चाँदी के कलमदान में ही एक ओर स्थायीरूप से जड़ा हुआ है। दो एक कश पीने के बाद छल्लेनुमा धुँआ कमरे की छत की ओर उड़ाते हुए और गौर से उसी की ओर देखते हुए। दुबे जी आश्चर्यचकित से उनकी ओर एकटक देखते रह जाते हैं] अच्छा तो यह बात है [मुसकुराकर यकायक भाव बदलते हुए] ! पर जनाब, मैं कोई पेशेवर मातमपुर्सी करनेवाला तो हूँ नहीं, जो चलके रोने-धोने में शरीक हो सकूँ। फिर लोगों को तसल्ली वगैरह देना या ज्ञान का उपदेश, ओ—फ ! यह मेरे सात पुश्त से भी न हो सकेगा। फिर मैं चलकर करूँगा ही क्या ? हाँ, आपको भ्रम हो सकता है। बल्कि मेरी मोटर लीजिए और मेहर-बानी करके एक बार देख आइए—पूछ आइए कि दर-असल वकील की जरूरत है या डाक्टर की। तब जैसा होगा, वैसा किया जायगा।

दुबे जी—[आश्चर्य का भाव दृढ़ता से घृणा में परिवर्तित करते हुए] बस, हद हो गई। मुझे ज्यादा समय भी नहीं है [उठते

हुए] कह दूँगा फीस मिलने का निश्चय न होने के कारण आप आने में असमर्थ हैं।

रमेशचंद्र—[वृद्ध की बातें अनसुनी करके फिर से काग़ज़ात में ध्यान लगाते हैं और सिगरेट खींचते हुए कुछ अमानुषिक रूप से मुसकुराते हुए कहते हैं] बड़ी कृपा। पर अपने मालिक से इतना कहने के साथ ही यह भी कह दीजिएगा कि [घृणामिश्रित गंभीरता से] 'जिस व्यक्ति ने इस चरम अवस्था के आ पहुँचने पर एक बार मुझसे मिलना जरूरी समझा और अपने पति द्वारा ही मुझे प्रकट रूप से बुलवाया, उसका जिक्र तक इस खत में करना आपने न जाने क्यों मुनासिब नहीं समझा।' आपके मालिक ने अपनी व्यक्तिगत हैसियत से ही मुझे बुलवाया है। उर्मिला देवी ने मुझसे मिलना चाहा है, यह लिखना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा। उर्मिला देवी उनकी स्त्री हैं। इसके माने यह नहीं है कि हमेशा के लिए उसने अपना अस्तित्व ही भगवान बाबू में मिला दिया है। पर आपके बाबू साहब शायद ऐसा ही समझते हैं। यह उनकी भयानक भूल है। [वृद्ध विस्फारित नेत्रों से यह सब सुन लेता है और फिर आश्चर्य से डूबा हुआ-सा बाहर निकल जाता है; वकील साहब यकायक बहुत व्यस्तरूप से मिसलें देखने में लग जाते हैं, पर तुरंत ही मुसकुराता हुआ उनका दीर्घकाय मित्र रामेश्वरसिंह कमरे में प्रवेश करता है और यह कहता हुआ कुर्सी पर बैठ जाता है।]

रामेश्वरसिंह—आखिर हमारी बात सही नीकली न ?

रमेशचंद्र—क्या तुम बाहर खड़े सब सुन रहे थे ?

रामेश्वरसिंह—ऊँह, इससे क्या, अब मान जाओ कि मैं ठीक कह रहा था।

रमेशचंद्र—यह तो तुम उलटी बात मनवाना चाह रहे हो। माना कि चलते वक्त उन्होंने एक बार मुझे याद फर्माया है पर मैं गया तो नहीं। हाँ मैं जाऊँगा उसके पास, पर जब पक्की खबर मिल जायगी कि वह मर गई तब।

रामेश्वरसिंह—इम्पासिबुल् (गैरमुमकिन) इस हालत में बुलाए जाने पर जब हज़रत गए नहीं तो मरने पर कौन तुरत खबर लेकर दौड़ा आवेगा। और फिर जाकर करोगे ही क्या ?

रमेशचंद्र—तुम इन बातों को नहीं समझ सकते। उसे यह तो अब मालूम हो ही जायगा कि इस अवस्था में बुलाए जाने पर भी मैं नहीं आया। और यदि इसी भावना को लिए हुए ही वह मर गई तो मेरी विजय पूरी होगी। अपनी अंतिम सांस तोड़ते समय उसे मालूम होगा कि एक पुरुष के सच्चे प्रेम के निरादर को प्रतिक्रिया कितनी निदारुण हो सकती है। पर फर्ज करो कि मैं गया और दैवयोग से वह आगे चलकर अच्छी हो गई तो वह अपनी शक्ति के घमंड से फूली नहीं समायगी ! [कुछ देर सोचकर] अच्छा, मैं एक काम करता हूँ, अभी मोटर लेकर उसके

घर की ओर चलता हूँ। गली के मोड़ पर ही मोटर रुकवा कर, ड्राइवर को भेज कर खबर मँगवाऊँगा कि वह जीती है या मर गई। फिर अगर मरने की खबर पाऊँगा तो एक बार जाऊँगा; और नहीं तो वापस आऊँगा। तुम भी साथ चलो।

रामेश्वरसिंह—[अर्थपूर्ण मुस्कुराहट के साथ] चलो, हमारी मोटर बाहर तैयार खड़ी है [दोनों बाहर निकलते हैं]।

[परदा]

तीसरा दृश्य

[सड़क। एक पतली गली दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे मकान हैं, कुछ लोग काम से आ-जा रहे हैं, एक मोड़ के पास रमेशचंद्र और रामेश्वर-सिंह खड़े बातें कर रहे हैं।]

रमेशचंद्र—[अत्यंत उत्तेजित और उद्विग्नता के भाव से] ड्राइवर अभी तक खबर लेकर लौटा नहीं शायद जीती है, चलो लौट चलें, ड्राइव खुद करेंगे, वह आता होगा।

रामेश्वरसिंह—[मानों स्वप्न देख रहा है, उसकी बातों से चौंककर, पर दार्शनिकों की भाँति मुसकुराता हुआ] क्यों, अब हिम्मत जवाब दे रही है क्या? अच्छा, उसे आ तो जाने दो, मरने के बाद तुम्हें वहाँ जाना है न?

रमेशचंद्र—[अत्यंत उत्तेजित हो] मगर जब वह इतनी मरणासन्न

है तो यों भी जाने पर क्या वह पहचानेगी? [उसको घसीटता हुआ] अच्छा चलो, ज़रा मकान के क़रीब तक तो पहुँचे रहें।

रामेश्वरसिंह—अच्छा, चलता हूँ; मगर अब तुम्हें ले ही चलूँगा। अगर ईश्वर की कृपा से वह जीती निकली तो जन्म भर अपना भाग्य सराहना और मुझे दुआ करना।

रमेशचंद्र—[रुँधे गले और छलछलाई आँखों से] क्या कहते हो रामेश्वर? मुझे कमज़ोर समझते हो? [इधर हाँफता हुआ और बहुत घबराया हुआ ड्राइवर पहुँचता है। रामेश्वर गूढ़ दृष्टि से उसके भीतर का भाव जानने की चेष्टा करता है, पर रमेशचंद्र एकबारगी उस पर टूट-सा पड़ता है और दोनों हाथों से भर ज़ोर उसके दोनों कन्धों को झकझोरता हुआ, अस्फुट स्वर से काँपते हुए और अत्यंत उद्विग्न स्वर से जल्दी-जल्दी कहने लगता है।]

रमेशचंद्र—जीती है न? [ड्राइवर स्तंभित और चुप है।]

रमेशचंद्र—[और भी घबराकर और ज़रा क्रोध से] जल्दी बताता क्यों नहीं, क्या देखकर—

ड्राइवर—[डरते-डरते] साहब वहाँ तो रोना-पीटना हो रहा है। एक डाक्टर साहब अभी सार्टीफिकेट लिखकर गए हैं।

[रमेशचंद्र वज्राहत-सा स्तब्ध होकर रह जाता है। इधर रामेश्वर की आँखें धीरे-धीरे शरदकालीन सरोवर की भाँति भर आती हैं

और वह लड़खड़ाते हुए रमेशचंद्र को यकाएक पकड़कर अपने विशाल वक्षःस्थल से चिपका लेता है। दोनों अस्फुट स्वर से रो पड़ते हैं।]

रामेश्वर— [ईषद् जुगुप्सामिश्रित सहानुभूति के साथ] **अब जाओ न—मरने के बाद—जैसी हाँक रहे थे।**

रमेशचंद्र—[कुछ भी बोलने में असमर्थ, पर मानों बड़ी चेष्टा से] **बस, चुप रहो। ड्राइवर, मोटर लाओ।**

[रामेश्वर रमेश को मानों गोद में लिए हुए-सा अश्रु-पूर्ण आँखों से आगे बढ़ता है और ड्राइवर पहले ही खिसक जाता है; धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

वे दोनों

श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी

[पं० सद्‌गुरुशरण अवस्थी सनातनधर्म कालेज, कानपुर, में हिंदी के अध्यापक हैं। आपने कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं। हिंदी के विद्वान् लेखकों में आपकी गणना होती है। आपने एकांकी नाटक लिखने में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। लीडर प्रेस से 'दो एकांकी नाटक' और छात्र-हितकारी पुस्तक-माला से 'मुद्रिका' नामक आपके एकांकी नाटक प्रकाशित हुए हैं। अवस्थीजी ने पौराणिक कथानकों पर सुंदर एकांकी नाटक लिखे हैं। आपकी भाषा बड़ी मँजी हुई और विशुद्ध होती है।]

पहला दृश्य

[चाँदनी चौक, दिल्ली के एक ओर का चतुष्पथ है। एक मोटर एक ओर से सहसा निकलकर दूसरी ओर की मोड़ से निकलते हुए ताँगे से भीड़ जाती है। मोटर का कुशल संचालक अपने वाहन को तुरंत रोककर ताँगे-वाले पर टूट पड़ता है। मोटर का स्वामी ही उसका वाहक है। चूड़ीदार स्वच्छ पायजामे और रेशमी अचकन के ऊपर उसी कपड़े की नौकाकार टोपी पहने हुए है। इस व्यक्ति की वेश-भूषा से प्रकट है कि यह कोई धनी सेठ है। मोटर के पीछे स्थान पर एक सेवक लाल पगड़ी बाँधे बैठा है। स्वामी के क्रोध को वह कभी उत्तेजित करता है और कभी स्वयं आगे बढ़कर अधिक क्रोध प्रदर्शित करने लगता है।]

सेठजी—[क्रोध से लाल होकर, मोटर से उतरकर, ताँगेवाले को मारते हुए] **अंधे के बच्चे ! ऐसे ही ताँगा चलाता है ? बदमाश कहीं का !** [ताँगेवाले के सिर से बँधा हुआ वस्त्र गिर जाता है ।]

ताँगेवाला—[सिटपिटाकर] **सरकार ने हार्न कब बजाया ? मुझे तो जमादार ने हाथ दे दिया था ।**

सेवक—[गरम होकर, गाड़ी से नीचे उतरकर] **कान के छेदों को कुछ बड़ा करके दिल्ली की सड़कों पर निकला कर ।**

[इतनी देर में एक छोटी-सी भीड़ एकत्रित हो जाती है । सिपाही भी वहीं आ जाता है । स्वामी और सेवक धीरे से मोटर पर बैठ जाते हैं ।]

सिपाही—[ताँगेवाले पर बिगड़कर] **यह बड़ा बेहूदा है, बाबूजी ! उस दिन भी इसने यही किया था ।**

सेठजी—**इसे अभी ले जाकर बंद कर दो । ठीक हो जायगा ।**

ताँगेवाला—[भय प्रदर्शित करते हुए] **मालिक मेरा कोई कसूर नहीं है । अबकी बार जाने दीजिए ।**

[सेवक भीतर बैठा-बैठा अपने स्वामी की ओर देखता है और फिर ताँगेवाले की ओर देखता है ।]

दूसरा सिपाही—[प्रवेश करके सेठजी के प्रति] **हुजूर ! क्या हुक्म है ?**

[सेठजी की ओर देखता है और फिर ताँगेवाले की ओर देखता है ।]

सेठजी—इसका चालान कर दो।

[उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए सेठजी मोटर चला देते हैं।]

दूसरा सिपाही—[पहले सिपाही से] ताँगेवाले की सूरत में और सेठजी की सूरत में गजब की मुशाबेहत है।

पहला सिपाही—मैं भी यही देख रहा था।

दूसरा सिपाही—क्यों बे ताँगेवाले! सेठजी की और तेरी सूरत इतनी क्यों मिलती है?

भीड़ का एक व्यक्ति—[विनोद-भाव से] छोटा भाई है, तभी तो मार सह ली।

पहला सिपाही—नहीं तो क्या करता?

ताँगेवाला—मैं क्या कर सकता था? ये लोग मेरा मजहका उड़ा रहे हैं। सेठजी का मुझे भाई बनाते हैं। कहाँ राजा भोज कहाँ गँगुवा तेली।

भीड़ का एक दूसरा व्यक्ति—जिस समय इस ताँगेवाले के सिर से वस्त्र गिरा, बिलकुल वैसी ही आकृति! अश्विनीकुमारों की जोड़ी मालूम होती थी।

दूसरा सिपाही—[ताँगेवाले से] जा बे, भाग जा! ऐसे सेठ-वेठ कहा ही करते हैं। [ताँगेवाला ताँगे को भगा देता है।]

पहला सिपाही—कहीं यह सेठ सरदार साहब से न कह दे।

दूसरा सिपाही—देखा जायगा। खुद गलती करें और दूसरे पर रोब जमावें।

भीड़ के दो-तीन व्यक्ति—न हुए हम लोग, नहीं तो देखते,

बिचारे गरीब पर कैसे कोई हाथ चलाता। सेठजी को भी आटा-दाल का भाव मालूम हो जाता।

पहला सिपाही—अरे भाई ! जाले के भरोसे मकड़ी मक्खी पर टूटती है। [धीरे-धीरे सब लोग तितर-बितर हो जाते हैं।]

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

[मकनपुर ग्राम का भारत-प्रसिद्ध पशुमेला लगा है। नाना प्रकार के पशुओं और उनके संरक्षकों के कोलाहल ने एक विचित्र नादसंकुलता उत्पन्न कर रखी है। भार-वाही पण्य लादनेवाले और त्वरा गतिवाले दोनों प्रकार के पशु बिक रहे हैं। इसी पैंठ के अश्वविभाग में एक धनी अपने दो सहचरों के साथ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर परिभ्रमण कर रहा है। धनिक ढीला-ढाला रेशमी कुरता पहने है। केशों से बिलकुल विरल सिर अनावृत है। उसके ठीक पीछे का व्यक्ति वैसे ही आकार-प्रकार का है और उसी ढंग का महीन मलमल का कुरता भी पहिने है। सबके पीछे लाल पगड़ी वाला लकुटग्राही संरक्षक मंद-मंद गति से चल रहा है। धनी एक स्थल पर रुक जाता है। उसके अनुचर कुछ आगे बढ़ जाते हैं।]

अश्वविक्रेता—[धनिक को रोककर] लालाजी ! मैंने जो आपके छोटे भाई को इस जानवर के दाम बतला दिए हैं वह अधिक नहीं हैं।

लालाजी—[आश्चर्य से] कौन भाई ?

अश्वविक्रेता—वही जो आगे निकल गए हैं। अभी आपके पीछे चल रहे थे। [ऐसा कहकर तर्जनी से संकेत करता है।]

लालाजी—वह तो अश्वविशेषज्ञ है। अश्वों की परख के लिए मैं उसे साथ लाया हूँ। प्रमाद हो गया है क्या ?

अश्वविक्रेता—तो क्षमा कीजिएगा।

लालाजी—तुमने उसे मेरा भाई कैसे समझ लिया ?

अश्वविक्रेता—सरकार अपराध क्षमा हो। आपकी और उनकी मनुहार बिलकुल मिलती है। [घोड़े मलनेवाले अपने पास के व्यक्ति की ओर मुड़कर] ओ रे मलुआ ! ठीक है न ?

लालाजी—तू नहीं जानता कि वह मुसलमान है और मैं हिंदू ?

मलुआ—का भवा, हिंदू औ तुरुक वही भगवान क बेटवा अहैं। नाराजी काहे बरे ? कपड़वा म फरक जरूर अहै मुलौं सूरत वैसने अहैं।

[इतने में अश्वविशेषज्ञ और लकुटधारी सेवक भी आ जाते हैं। अश्वविक्रेता, मलुआ तथा आसपास के व्यक्ति कभी लालाजी की ओर, कभी अश्वविशेषज्ञ की ओर देखते हैं। सबके हृदय में साम्य की भावना उत्पन्न हो जाती है।]

अश्वविक्रेता—सरकार देखिए………।

लालाजी—[उत्तेजना के साथ बात काटकर] मैं इतना मूल्य कदापि नहीं दे सकता। [अश्वविशेषज्ञ की ओर मुड़कर] क्यों जी, तुम क्या तीन सौ रुपये इस घोड़े के ठीक समझते हो ?

अश्वविक्रेता—[बड़ी नम्रता से] बाबूजी······

लालाजी—[झिड़ककर] ठहरो जी, इन्हें कहने दो।

अश्वविशेषज्ञ—नहीं, मेरी राय में यह कीमत ज्यादा है। ज्यादा-से-ज्यादा दो सौ रुपये दिए जा सकते हैं।

[पास का एक व्यक्ति निकट खड़े हुए अपने एक दूसरे साथी को हाथ पकड़कर कुछ दूर ले जाता है।]

पहला व्यक्ति—और बोल भी एक-सा है—सुना न ?

दूसरा व्यक्ति—और दोनों की आयु भी एक ही दिखाई देती है।

पहला व्यक्ति—कद भी एक-सा ही है।

अश्वविक्रेता—अच्छा तो एक बात कहे देता हूँ। सरकार को यदि लेना हो तो अढ़ाई सौ में मिल जायगा। इससे कम न होगा।

लालाजी—[अश्वविशेषज्ञ को पृथक ले जाकर कुछ परामर्श करता है और फिर आकर कहता है।] अच्छा तो इसे हमारे सेवकों के साथ खीमें में तुरंत भेज देना। [इतना कहकर धनिक चला जाता है।]

मलुआ—[अश्वविशेषज्ञ से] तौ का हमहूँ क लाला के डेरवा माँ जाये का अहै ?

अश्वविशेषज्ञ—नहीं तो क्या घोड़े को मैं ले चलूँगा ?

अश्वविक्रेता—अभी लालाजी हम लोगों से खफा हो गए।

सेवक—क्यों ?

अश्वविक्रेता—इनकी और लालाजी की सूरत एक-सी देखकर मैंने धोखे से इनको उनका छोटा भाई कह दिया।

अश्वविशेषज्ञ—तुम बिलकुल ना-समझ हो—कोई ऐसी बात कहता है ? मैं उनकी जूती की खाक भी नहीं हूँ।

मलुआ—[घोड़े का मलना छोड़कर] **मुलौ, रौरे जू की तैसी ही चितवन, तैसे बोल, तैसो ही चालु। भाइन-भाइन मा न मिली।**

सेवक—हाँ यह ठीक है। पर सामने कहने की यह बात नहीं है।

[घोड़ा खोलकर मलुआ चल देता है। अश्वविशेषज्ञ उसकी चाल देखता हुआ पीछे-पीछे चल देता है। सेवक सबसे आगे है।]

पटाक्षेप

तीसरा दृश्य

[लखनऊ का विशाल नगर है। एक बड़े विश्रामगृह के सबसे ऊँचे सुसज्जित भवन के बंद द्वार पर चूड़ीदार स्वच्छ पायजामा और कुरता पहने हुए सुसंगठित शरीरवाला एक नवयुवक ऊपर खड़ा है। इसके करों में एक रेशमी कुरता है। छोटी गठरी में उसी प्रकार के वस्त्र के ग्यारह और रेशमी कुरते हैं। अपने कला-प्रदर्शन और नाप की यथार्थता की परीक्षा के लिए एक कुरता बाहर है। यह व्यक्ति कभी ठहरता और कभी टहलता है। भवन के भीतर की धीमी से धीमी आहट पाकर बाहर प्रतीक्षा करनेवाले सेवक सजग हो जाते हैं और बड़ी शांति और

विनय के साथ द्वार पर आकर खड़े हो जाते हैं। ऐसा भ्रम दो बार हो चुका है। जब नौ बज चुके तो दरजी कुछ अधीरता के साथ पास खड़े हुए कहार से कहता है।]

दरजी—बाबूजी को तो दस बजे कौंसिल पहुँचना होगा ?

कहार—जरूर।

दरजी—क्या आज नहीं जायेंगे ?

कहार—क्या आज कोई नई बात है ? जायँगे क्यों नहीं।

दरजी—देर से पहुँचते होंगे ?

कहार—कभी नहीं, जगने के पौन घंटे बाद, सब काम से निपट कर, खा पी कर, मोटर पर बैठ जाते हैं।

दरजी—बड़ी जल्दी करते हैं। मगर इतनी देर तक सोते क्यों हैं ?

कहार—तीन बजे तक की रात की सैर कहाँ जाय ?

दरजी—क्या रोज का यही हाल है ?

कहार—मैं तो चार साल से यही देख रहा हूँ।

[इतने में बंद भवन के भीतर किसी के वेग से चलने की आहट होती है और द्वार एक झटके के साथ खुल जाता है। एक नवयुवक रेशमी बनियाइन और महीन धोती पहने दिखाई देता है। उसकी आकृति सुंदर होते हुए भी बड़ी विरूपित दिखाई देती है।]

[कहार धीरे से भीतर चला जाता है।]

बाबूजी—[द्वार तक आकर, दरजी के प्रति] क्यों मियाँ, तुम्हें और कोई समय नहीं मिला ?

दरजी—[नतमस्तक होता है।]

बाबूजी—अच्छा, तुरंत भीतर आओ।

[बाबूजी भीतर जाते हैं और दरजी भी धीरे-धीरे भीतर जाता है और सुसज्जित भवन में सामने खड़े हुए चार हाथ लंबे दर्पण के समक्ष दोनों खड़े हो जाते हैं।]

बाबूजी—[चिढ़कर] जल्दी करो; मेरे पास समय नहीं है।

दरजी—[धीरे से गठरी रखकर रेशमी कुरता पहनाने लगता है।]
बाबूजी······

[सामने दर्पण में दोनों के प्रतिबिंब परस्पर समक्ष दिखाई देते हैं। बाबूजी के विश्वस्त और निजी मंत्री राजाराम और उनका टाइपिस्ट गौरीनाथ भवन में दूर पर एक ओर आकर खड़े हो जाते हैं। दर्पण में कुरता पहनानेवाले दरजी और कुरता पहननेवाले बाबू का प्रतिबिंब एक साथ देखकर दोनों आश्चर्यचकित हो जाते हैं।]

राजाराम—[धीमे स्वर में गौरीशंकर से] स्रष्टा की निर्माण-कुशलता देखना चाहते हो?

गौरीनाथ—आपका क्या अभिप्राय है?

राजाराम—दर्पण के प्रतिबिंबों में कैसा साम्य है?

गौरीनाथ—मैं भी यही ध्यान से देख रहा हूँ।

राजाराम—इस दरजी की मुख-मुद्रा बाबूजी से बिलकुल मिलती है।

गौरीनाथ—वैसा ही गोल-गोल मुँह, ठीक वैसी ही लंबी ग्रीवा।

राजाराम—और नेत्रों की काली गोट और उनके दोनों ओर की पलकों की धूमिल श्यामल आभा, बिलकुल एक सी।

गौरीनाथ—और चितवन?

राजाराम—हाँ, हाँ, वैसी ही है। शरीर के प्रसार और प्रस्तार में भी कैसा साम्य है!

गौरीनाथ—यदि एक प्रकार के कपड़े पहना दिए जायँ तो पह-चानना कठिन हो जायगा।

राजाराम—दरजी कुछ कृशगात है। निर्धन है न?

गौरीनाथ—परंतु शुष्क पत्र की उभरी हुई नसों की भाँति बड़े बाबू की आकृति की झुरियाँ उसकी आकृति में कहाँ हैं?

राजाराम—विलास की मलिन छाया है।

गौरीनाथ—आप साम्य में स्रष्टा की कला क्यों मानते हैं? विष-मता में क्या कोई चातुरी नहीं होती?

राजाराम—होती क्यों नहीं है। कला तो अखिल का प्रतिरूप और इयत्ता के परे की वस्तु है। विभेद व्याख्या की संतति है। विभेद में ही सापेक्ष के दर्शन होते हैं और तब समीक्षा और मीमांसा का विस्तार बुद्धि करने लगती है।

[इतने में दरजी के मुँह पर बाबूजी का जोर के साथ एक तमाचा पड़ता है। वह तिलमिला जाता है। इस घोष ने गौरीनाथ और राजाराम की दार्शनिक चिंतना को तुरंत समाप्त करके उनके विवाद का सहसा अंत कर दिया। सब सेवक चुप हो जाते हैं। कहार भवन के बाहर चुपके से निकल जाता है।]

बाबूजी—नालायक कहीं का ! इतनी कसी बगल कर दी। [दरजी काँपते हुए हाथ से गले का बटन बंद करता है।] और गला भी छोटा कर दिया।

दरजी— [कंपित स्वर में] हुजूर ! सहूलियत से मुझे पहना लेने दीजिए। ठीक उतरेगा।

बाबूजी—हुजूर का बच्चा ! कपड़ा बरबाद करके रख दिया। निकल फौरन यहाँ से।

[इतना कहते हुए बाबूजी कुरता खोलकर फेंक देते हैं और चले जाते हैं।]

राजाराम—[निकट आकर दरजी से] इस समय तुम चले जाओ और वक्त आना।

दरजी—जैसा हुक्म।

[कुरता समेटकर तह करता है और गठरी में रखकर धीरे-धीरे चल देता है।]

कहार—मैंने पहले ही कहा था कि सबेरे किसी न किसी पर बीतती है। भैया ! आज मैं तो बच गया।

गौरीनाथ—तुम्हें इस बेचारे को सब समझाकर पहले से ही सावधान कर देना था।

राजाराम—आसव की अंतिम अँगड़ाई थी।

पटाक्षेप

चौथा दृश्य

[एक नितांत प्राचीन और गंदा इक्का धीरे-धीरे चल रहा है। उसकी उधड़ी सीवन वाली गद्दी के दो ओर दो अधेड़ आयु वाले व्यक्ति बैठे हैं। बीच में एक वृद्ध पार्श्व के अवलंब से टिककर बैठा है। उसकी ग्रीवा आगे की ओर झुकी है। इक्कावाला घोड़े के पास बिलकुल फटे और मैले वस्त्र पहने सटकर बैठा है। घोड़ा धीरे-धीरे रेंग रहा है। अपनी इच्छा से रुक-रुक भी जाता है। संचालक के अवाध कशाघात की लज्जा रखने के लिये वह फिर-फिर चलने लगता है। इक्के के ढचरढचर शब्द में मंथरता वेग से बैठी है। दाहिनी ओर का व्यक्ति मैली धोती, मैला मलमल का कुरता और दुपल्ली मैली टोपी लगाए है। बाईं ओर का व्यक्ति खद्दर का स्वच्छ कुरता, ऊँची दीवाल वाली गाँधी टोपी और खद्दर का पायजामा पहने है। बीच में बैठा वृद्ध काली टोपी और बंद गले का कोट पहने है। सामने मोहर्रम का बड़ा जलूस आ जाने के कारण सिपाही इक्के को एक प्रशस्त मार्ग पर रोक देता है।]

दाहिनी ओर का व्यक्ति—[बाईं ओर के व्यक्ति से] **तो इलाहाबाद होगा !**

बाईं ओर का व्यक्ति—मुझे इलाहाबाद जाने का कभी इत्तफाक नहीं हुआ।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—मुझे धोका हुआ। कोई दूसरा व्यक्ति आप ही की आकृति का रहा होगा। बड़ी धुँधली सी स्मृति है।

बाईं ओर का व्यक्ति—इंसानी मोहब्बत खुद-ब-खुद अपने जज़बात से मजबूर होकर मुशाबेहत की दुनिया ढूँढ़ा करती है। मुझे भी आपकी शक्ल याद आती है मगर वह शानो-शौकत कुछ और ही थी।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—चित्त पड़े हुए पाँसे का सौंदर्य कुछ और ही होता है और पट्ट का कुछ और ही। अंतर संभव है। आपका नाम ?

बाईं ओर का व्यक्ति—इस नाचीज को नूरइलाही कहते हैं।

[इक्केवाला कुछ आश्चर्य में आकर पीछे देखने लगता है।]

इक्केवाला—मैंने समझा था कि आप भी हिंदू हैं। आप दोनों...

वृद्ध यात्री—[नूरइलाही के प्रति] अच्छा, आप मुसलमान भाई हैं।

[वृद्ध यात्री झुककर कभी दाहिने और कभी बायें बैठ हुए यात्री की ओर देखता है।]

नूरइलाही—मैं हिंदुस्तानी हूँ। देश का अदना खादिम। मैं कहीं बाहर से थोड़े ही आया हूँ। यहीं आपके ही बीच रहता हूँ। हिंद की खाक से उठा और उसी की आबोहवा में पला हूँ।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—आप कहाँ के रहनेवाले हैं ? आपके माता-पिता कहाँ रहते हैं ?

नूरइलाही—मैं सिर्फ यही कह सकता हूँ कि मैं इस जमीन का बाशिंदा हूँ। मैं कहाँ पैदा हुआ और मेरे वालदैन कहाँ हैं यह मैं बिलकुल नहीं जानता।

[वृद्ध व्यक्ति घूर कर उसे देखता है ।]

दाहिनी ओर का व्यक्ति—यह कैसी बात !

नूरइलाही—मेरी जिंदगी एक दिलचस्प अफसाना है । यतीमखाने के लड़के के बारे में आप इससे ज्यादा और क्या जान सकते हैं ?

दाहिनी ओर का व्यक्ति—भाई माँ-बाप किसी को बड़ा नहीं बना सकते ।

नूरइलाही—आठ साल की उम्र तक ही मैंने यतीमखाने का एहसान गवारा किया । नवें साल चुपके से खसक गया । तब से अपने ही हाथों की कमाई खाता हूँ ।

[वृद्ध फिर उसकी ओर देखता है ।]

दाहिनी ओर का व्यक्ति—आप अब क्या काम करते हैं ?

नूरइलाही—सिले हुए कपड़ों का रोजगार करता हूँ ।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—यह काम आप कब से करते हैं ?

नूरइलाही—इसका भी एक दास्तान है । मेरी जिंदगी के सफे बड़ी जल्दी-जल्दी उलट चुके हैं ।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—फिर भी कुछ तो कहिए ।

नूरइलाही—दिल्ली की गलियों में भटकते-भटकते एक भठि-यारे के यहाँ पनाह मिली । उसके बूढ़े घोड़े को घास देता और मलता रहा । कुछ सालों बाद उसका ताँगा चलाने लगा ।

इक्केवाला—[मुड़कर] अच्छा ! आप ताँगा भी हाँकते थे ?

नूरइलाही—बाद में मुझे जानवरों का कुछ ऐसा इल्म हो गया कि उन्हीं की ख़रीद-फ़रोख़्त करने लगा।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—अच्छा तो दरज़ी का काम क्यों करने लगे?

नूरइलाही—मुझे यतीमखाने में ही कपड़े सीने का काम सिखलाया गया था। एक घोड़े को फेर रहा था कि उसने ऐसी लात मारी कि मैं मौत के मुंह में जाते-जाते बचा। आज तक उसी चोट से दिल धड़का करता है।

[वृद्ध सम्हलकर बैठ जाता है और दोनों यात्रियों की ओर उचक-उचककर देखता है।]

तभी से जानवरों का रोज़गार छोड़ना पड़ा। इधर कुछ सरमाया इकट्ठा हो गया था। मगर सौराज की लड़ाई में दो बार जेल जाना पड़ा। सारी पूँजी खो बैठा। अब तो शाम तक नमक रोटी मिल जाती है।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—जिस काम में चार पैसे मिलें वही ठीक है। आपके कै बच्चे हैं?

नूरइलाही—मैंने शादी ही नहीं की। अब सरकार अपना हाल तो कहें।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—आपकी भाँति मैं भी कभी एक अनाथालय की बस्ती का सौंदर्य था। परंतु बाद को कथा एक उल्का की कहानी है।

[वृद्ध उचककर इसकी ओर देखने लगता है फिर नूरइलाही की ओर देखता है।]

नूरइलाही—तो मेरी तरह आपको भी अपने वाल्दैन का पता नहीं।

[वृद्ध फिर दोनों को देखता है।]

दाहिनी ओर का व्यक्ति—सेठ हरविलास ने मुझे दो सहस्र रुपयों में क्रय किया। उन्होंने मुझे गोद लिया।

[सब लोग उसकी ओर आश्चर्य से देखते हैं।]

आप लोगों ने सेठ शिवविलास का समाचार तो सुना होगा?

इक्केवाला—इतने बड़े आदमी को कौन नहीं जानता!

नूरइलाही—उनकी अय्याशी के तो बड़े-बड़े किस्से हैं। इधर कुछ दिनों से उनका कोई शोर नहीं सुनाई दिया।

दाहिनी ओर का व्यक्ति—वही सेठ शिवविलास सब फूँक-ताप कर आपके समक्ष बैठा है। [आँसू भर आते हैं।]

[सब लोग आश्चर्य से देखते हैं। वृद्ध देर तक नेत्र-विस्फारित होकर देखता है।]

नूरइलाही—दुख न कीजिए। परमेसुर फिर देगा। बच्चे कै हैं?

शिवविलास—बच्चे और स्त्री सभी त्याग गए। नौकर, घोड़ा, गाड़ी, मोटर, महल सभी दरिद्र-नारायण की एक फूँक में उड़ गए।

[वृद्ध की मुद्रा विषादापन्न दिखाई देती है।]

नूरइलाही—बीबी बच्चे, चाँद और सूरज की तरह तुलू और ग़ुरूब होते रहते हैं। धन-दौलत, गरमी और सरदी हवा

के झोंके के साथ आते जाते हैं। इनके लिए अफ़सोस क्यों किया जाय ?

शिवविलास—ठीक है। पर अपने को सम्हाले रखनेवाला व्यक्ति ही इनका स्वागत कर सकता है। यहाँ तो मन और शरीर दोनों जर्जर हैं।

नूरइलाही—लालाजी हम दोनों की क़िस्मतें एक ही वक्त पर गढ़ी गई थीं। बिना वालदैन के आये और बिना औलाद के ही जायँगे। ऐसा तो सगे भाइयों में भी मिलना मुश्किल है।

इक्केवाला—सरकार आप लोगों की सूरत भी मिलती हैं।

[वृद्ध उचककर फिर दोनों की ओर देखता है और नेत्र बंद कर लेता है।]

शिवविलास—हो सकता है।

[नूरइलाही से]

आप गरीब होकर अमीर हो गए और मैं अमीर होकर ग़रीब ही रह गया।

नूरइलाही—मैं अमीर नहीं, मगर ग़रीबी मुझे कभी महसूस नहीं हुई।

शिवविलास—मेरी अमीरी तो नशे में ही बीती।

नूरइलाही—नशा वह जोश है जो किसी भी क़िस्म के बहाव में पड़े हुए इंसान को उससे झगड़ना या उसके साथ बहना सिखा देता है। अमीरी आकर चली जाती है और ग़रीबी भी जाकर चली आती है।

शिवविलास—यहाँ तो बड़ी देर मालूम होती है। अब मैं उतर कर इधर की गली से निकल जाऊँगा।

[उतरने लगता है]

नूरइलाही—मैं भी पास ही रहता हूँ। सामने की गली से मैं भी निकल जाऊँगा।

[वह भी उतरता है]

[तीसरा यात्री भी उतर पड़ता है। नूरइलाही और शिवविलास इक्केवाले को पैसे देकर परस्पर अभिवादन करके, पृथक-पृथक मार्ग से, चल देते हैं। वृद्ध उनकी ओर देखता रहता है और पैसा देना भूल जाता है। वह बोलता नहीं है पर उसके नेत्र मानों चिल्ला चिल्लाकर उन्हें लौट आने के लिए पुकारते हैं।]

इक्केवाला—बुढ़ऊ बाबा! पैसे दीजिए। क्या सोच रहे हैं?

वृद्ध—कुछ नहीं, इन्हीं की बातें सोच रहा था।

इक्केवाला—[पैसे लेते हुए] बहुत सालों से चलते हुए रुपए और उसी बादशाह के थोड़े वक्त के निकले हुए रुपए में जो फ़र्क होता है, वही लाला शिवविलास में और आप में फ़र्क है।

वृद्ध—[झुँझलाकर] तुम अपने रास्ते जाओ।

[इतना कहकर वृद्ध एक छोटे मार्ग में मुड़ जाता है। इक्का टिक-टिक करता हुआ आगे बढ़ता है।]

मध्य यवनिका अवरोहण

पाँचवाँ दृश्य

[धवल-वस्त्रावरण-विभूषित एक शयनाधार पड़ा हुआ है। उस पर एक वृद्ध लेटा हुआ करवटें बदल रहा है। पास ही चटाई पर उसकी वृद्धा पत्नी आसीन है। वह पति के मुख पर व्यजन करती है। भवन में पवन के स्वच्छंद विहार के लिए पर्याप्त अवकाश है। ऊपरी भाग के द्वार से सटकर यह शयनाधार रखा है। इस दंपति की आयु ६५ वर्ष के लगभग प्रतीत होती है।]

वृद्धा—आज आप कुछ अनमने से दिखाई देते हैं।

वृद्ध—न—हीं तो।

वृद्धा—बतलाइए भी क्या बात है?

वृद्ध—तुम्हें आज से पचास वर्ष की कोई घटना स्मरण है?

वृद्धा—किस घटना की ओर आपका संकेत है?

वृद्ध—जब मेरे पाप के प्रायश्चित्त में तुम्हें तिरस्कार सहना पड़ा था।

वृद्धा—उस घटना को पाप कहकर मुझे उत्तेजित न कीजिए। पाप समाज का था जिसने गुलाब-सदृश मेरे दो लालों का प्रकाश के दर्शन करते ही गोदी से छीनकर काल की डाढ़ में झोंक दिया।

वृद्ध—तुम्हारी मर्यादा और मेरी रक्षा के लिए यह नितांत आवश्यक था।

वृद्धा—पर समाज ने आपके ही हाथों तो मुझे सौंपा? क्या यह पहले ही अनुमान नहीं किया जा सकता था?

वृद्ध—फिर भी क्वाँरेपन की उच्छृङ्खलता पर समाज का स्वीकृत हस्ताक्षर कर देना विश्व के लिए अवांछनीय था।

वृद्धा—मैं तो विवाह-विधि को क्वाँरेपन के स्नेह-प्रवाह की केंद्राभिमुखी गति समझती हूँ। प्रेम की नैसर्गिकी वृत्ति को विवाह-परंपरा के ग्रंथि-बंधन के अभाव की आड़ में दबा देना वैसा ही बालिश्य प्रयास है जैसा कि पावस का प्रखर प्रवाह रोकने के लिए घरघराती हुई नदी के किनारे मंत्र पढ़ना।

वृद्ध—तो क्या नासमझ कन्याओं को जिससे तिससे प्रेम करने के लिए क्वाँरेपन में ही स्वतंत्र छोड़ दिया जाय?

वृद्धा—कन्याओं में नासमझी का दोष भी समाज का है। नासमझ को समझदार बनाने के लिए आपको कोई मना नहीं करता। परंतु प्रेम का कोमल स्रोत, विवाह के पूर्व प्रस्फुरित न होने पावे, इसका बलवान प्रयास विवाह के ध्येय को ही नष्ट कर देता है। अलौकिक मस्ती लिए हुए इस वृत्ति की मधुर सिहरन की अनुभव-क्षमता उदय हो जाने पर ही विवाह-पालने में झूलने का आनंद आता है।

वृद्ध—तुमने अपनी शिक्षा का कोई पाठ्य-क्रम बनाया है क्या? यही न कि अविवाहिता कन्याएँ क्वाँरेपन में ही पुरुषों से मिला करें।

वृद्धा—मैं यह कहूँगी कि पुरुषों की दृष्टि से लुकाछिपी खेलने का स्वभाव कन्याओं में न डालना चाहिए। क्या वे अपने पिता,

भाई, संबंधी, के समक्ष बेधड़क नहीं निकलतीं—फिर उन्हें और पुरुषों से क्यों छिपाया जाय ?

वृद्ध—क्योंकि तरुणों की आकांक्षाएँ विवेक का परामर्श बहुधा सरलता से नहीं सुनतीं।

वृद्धा—यदि वर्षा की बाढ़ में पवित्रापगा अपने उपकूलों के दो चार वृक्ष ढाह देती है तो इससे उसकी शरद्‌कालीन शुभ्र-धारा की महिमा कम नहीं होती। प्रवाह के घरघराहट के भय से नदी को सूखी ही रखना निसर्ग भी पसंद नहीं करता।

वृद्ध—मुझे तो इसमें भारी अस्तव्यस्तता दिखाई पड़ती है।

वृद्धा—सशंक प्राणियों के लिए रूढ़ि का ध्वंस करना असंभव है। क्या आपको मानवता की नैसर्गिक ऊर्ध्वगति में विश्वास नहीं ?

वृद्ध—परंतु उसकी अधोगति को भुला देना भी कहाँ तक ठीक है।

वृद्धा—नाद की नैसर्गिक वृत्ति आकाश में भ्रमण करनेवाली शब्द-तरंगों के साथ रमण करती है। यदि निकट के कूप में वह धोखे से कूद जाती है तो प्रतिध्वनि की भारी चीख के साथ निकल भी पड़ती है। यह सजीव धर्म का अधार्मिक अपवाद है। इससे क्षुब्ध न होना चाहिए।

वृद्ध—तुम क्वाँरियों के लिए कैसी स्वतंत्रता चाहती हो ?

वृद्धा—क्वाँरी और क्वाँरे विश्व की अभिव्यक्ति के लिए मात्राएँ

और व्यंजन हैं। उनकी समष्टि ही सृष्टि का आधार है और कल्याण की नीव है। उन्हें अच्छी प्रकार से शिक्षित करने के लिए भी परस्पर ज्ञान की अपेक्षा होती है।

वृद्ध—क्या तुम्हें अपने क्वाँरेपन के कृत्य पर कभी परिताप नहीं हुआ ?

वृद्धा—हाँ हुआ—पर वह मेरा प्रमाद था। संसार की वक्ररेखा पर लिखने के प्रयास में मेरी पंक्तियाँ भी वक्र हो गईं। पर आप ही कहिए यदि शकुंतला को कण्व के समक्ष लज्जा नहीं आई तो मुझे भी विश्व के समक्ष परिताप क्यों करना चाहिए।

वृद्ध—तुम्हारा ध्यान तो उस क्षण की गरिमा की ओर अधिक है।

वृद्धा—अवश्य—मुझे तो वह सुन्दरतम अतीत क्षण कभी नहीं भूलता जब मैंने खुशी-खुशी अपने क्वाँरेपन के दृश्य पर अपने हाथों यवनिका खींच दी थी। यह जो पाणिग्रहण-संस्कार विश्व ने बाद में मेरा किया उसे मैं केवल परिपाटी का अनुलेख समझती हूँ। मंत्र उच्चारण करते समय मेरी अंतरात्मा उपहास कर रही थी।

वृद्ध—यदि मेरे स्थान पर विवाह के लिए कोई दूसरा व्यक्ति होता ?

वृद्धा—दुनिया से मैं तब तक सहयोग कर सकती थी जब तक वह मेरी गति से पग मिलाए थी। अन्यथा हमारे मार्ग भिन्न थे।

वृद्ध—बड़ी परीक्षा की घड़ी थी !

वृद्धा—पर इस विवाद-प्रवाह में आपकी बात तो रह ही गई ।

वृद्ध—हाँ ! यह बतलाओ कि प्रसव-घड़ी कैसी बीती थी ।

वृद्धा—पहली बार की प्रसव पीड़ा का मर्मांतक-क्लेश मुझे निसंज्ञ किए था । इस मूर्च्छा की परिस्थिति में भी सावधानी का झटका कभी-कभी लग जाता था । यह उत्पन्न पुत्र का मोह था । पहला लाल उत्पन्न होते ही छिपाकर कहीं फेंक दिया गया । सम्हलते सम्हलते मैंने अपना आँचल और विस्तर सूना पाया । शारीरिक पीड़ा पर मानसिक ठेस लगी । मैं तिलमिला गई ; लतिका ने अपर कोंपल का प्रस्फुटन अनुभव किया । क्षतिपूर्त्ति का यह प्रयास भी व्यर्थ हुआ । मेरे हाथ फैले रह गए । नेत्र ललक रहे थे । रोने की आज्ञा न थी । घर का उजाला करनेवाला यह रत्न भी दूसरे ओर के मार्ग में फेंक दिया गया ।

[वृद्धा इतना कहती कहती रोने लगी ।]

वृद्ध—[उठकर बैठ जाता है ।] ऐं—रोती क्यों हो ?

वृद्धा—तब खुलकर रो न सकती थी । अब कौन रोकनेवाला है ? उन कोमल नवनीत गुल्मों को प्रखर आतप में पिघल कर मिट्टी में मिल जाने के लिए उस पापिनी मौन-स्वीकृति ने ही आज हम लोगों को शाप दे रखा है और हम अपत्यहीन हैं ।

वृद्ध—[निश्वास लेकर] परंतु मैंने आज तुम्हारे दोनों पुत्रों को एक साथ देखा है ।

वृद्धा—आप भी मेरा उपहास करते हैं। क्रूर झंझानिल के झोंके से धराशायी कलिकाएँ कहीं खिल सकती हैं?

वृद्ध—मेरा कंठ अवरुद्ध-सा है। उनके निजी मुख से मैंने उनकी कहानी सुनी है।

वृद्धा—मेरा धैर्य अब रिक्तप्राय है। यदि आपकी बात परिहास-पूर्ण भी हो तो भी कह डालिए।

वृद्ध—बात कुछ ऐसी प्रतीत होती है कि पहले पुत्र के विसर्जन-स्थान के निकट मुस्लिम यतीमखाना था। वहाँ के अधिकारी उसे उठा ले गए और पाल-पोसकर बड़ा किया।

वृद्धा—[जुगुप्सा से] तो क्या मेरे पुत्र का धर्म-परिवर्तन भी हो गया?

वृद्ध—मूर्खता की बातें करती हो। नाना आकारक्षम जल का कोई निजी रूप नहीं होता। वह तो आधार की रूपरेखा से स्वरूप ग्रहण करता है। स्तन्य-पायी शिशु का कौन धर्म? परिस्थितियों ने विश्व के जिस विचार-विभाग में उसे ला रखा,वहीं का अभिधान उसके विज्ञापन में अंकित होता है।

वृद्धा—[उत्सुकता से] और दूसरे का क्या हुआ?

वृद्ध—वह कदाचित् उसके विपरीत मार्ग में हिंदू अनाथालय के निकट छोड़ा गया था। वहीं वह पाला गया।

वृद्धा—ईश्वर उनका कल्याण करे! अब वे कहाँ हैं?

वृद्ध—मुसलमान यतीमखाने का बच्चा आठ वर्ष की आयु में

ही अपने आश्रयालय की यातनाओं से झगड़ते-झगड़ते, ऊब कर, भाग खड़ा हुआ।

वृद्धा—मेरे पुत्र······।

वृद्ध—दिल्ली की गलियों में माँगते खाते एक ताँगेवाले के यहाँ घोड़ा मलने और फिर घोड़ा हाँकने का कार्य करने लगा।

वृद्धा—बड़ी यातनाएँ सहीं। मेरे लाल ने हमें खबर न दी।

वृद्ध—मूर्ख रमणी; गेहूँ पिसते समय बाली की सुध कब लेता है? बेचारे को अपनी जननी-जनक का क्या पता?

वृद्धा—वह अब क्या करता है और कहाँ है?

वृद्ध—धीरे-धीरे वह अश्वविशेषज्ञ हो गया परंतु एक घोड़े ने एक बार उसे मर्मस्थल पर लात मार दी।

वृद्धा—[भरे-कंठ से] हाय भगवन्—!

वृद्ध—तभी से उसने यह व्यवसाय छोड़ दिया आजकल सिले हुए वस्त्रों का व्यापार करता है।

वृद्धा—विवाह हुआ है? बच्चे कै हैं?

वृद्ध—नहीं—उसने विवाह नहीं किया। देशसेवा में कई बार कारावास हो चुका है।

वृद्धा—[निश्वास खींचती है।]

वृद्ध—तुम्हारी दूसरी संतान का चरित्र और भी विचित्र है।

वृद्धा—वह कहाँ है—और क्या करता है?

वृद्ध—तुमने लाला शिवविलास का नाम तो सुना होगा?

वृद्धा—चार-पाँच वर्ष हुए इनकी बड़ी धूम थी। सुनते हैं कि नोट बाँधकर पतंग उड़ाते थे। सहस्रों रुपए प्रतिदिन व्यय कर देते थे। क्या वह इन्हीं के यहाँ नौकर है ?

वृद्ध—यही शिवविलास ही तुम्हारा दूसरा पुत्र है।

वृद्धा—विश्वास नहीं होता। इस चूड़ांत विलासी में भी विश्व को चकाचौंध कर देने की शक्ति थी। मैं धन्य हुई। पर यह घटना कैसे घटी ?

वृद्ध—शिवविलास को गोद लेनेवाला पिता हरविलास संतानहीन था। चुपके से अनाथालय को पुष्कल धन देकर हमारी संतान को क्रय कर लिया।

वृद्धा—वह धन्य है।

वृद्ध—परंतु उत्तराधिकार की करोड़ों की संपत्ति शतधा होकर निकल भगी। सेठ शिवविलास अब साधारण शिवविलास रह गया है। पंखुड़ियाँ झड़ा हुआ अधोमुखी, वृंत-विलंबित, सुगंध-रिक्त पुष्प अब वायु के अंतिम झोंकों की राह देख रहा है। ऐश्वर्य, पुत्र-पुत्री, पत्नी सभी से वह वंचित है।

वृद्धा—[सिसकती हुई] हाय भगवन् ! हमारे ही दुर्भाग्य की मलिन छाया हमारी संतान को भी घेरे है।

वृद्ध—एक अत्यंत प्राचीन, टूटे इक्के पर दोनों, दोनों छोर पर बैठे थे। प्रसंगवश उन्होंने अपनी-अपनी रामकहानी कही। पीछे दुबका मैं बैठा-बैठा सब सुन रहा था।

वृद्धा—अपने माता-पिता की कुछ चरचा नहीं की ?

वृद्ध—संदर्भ में जब यह प्रसंग आया तो दोनों ने ही कुछ हेयता के साथ यह स्वीकार किया कि उनके माता-पिता का कुछ पता नहीं है।

वृद्धा—क्या मुड़कर किसी ने तुम्हारी ओर नहीं देखा?

वृद्ध—[आँसू भरकर] अपनी-अपनी कहानी की झोंक में उन्हें यह ध्यान कहाँ था कि पीछे सिकुड़ा हुआ एक बूढ़ा बैठा है।

वृद्धा—[दर्द भरी वाणी से] और तुमने उन्हें ध्यान से देखा था?

वृद्ध—एक बार नहीं, अनेक बार। आकृति और मनुहार में ऐसा अनुपम सादृश्य था कि देखते ही बनता था। नेत्र तो तुम्हारे जैसे, बिना काजल की काली गोट धारण किए थे।

वृद्धा—[अधीर-भावना से] और वे उतरकर चले गए—तुमने उन्हें पकड़ क्यों नहीं लिया? अपने साथ क्यों नहीं लाए?

वृद्ध—मन मूढ़ था। इंद्रियाँ भाव-विभोर थीं। वात्सल्य ने समस्त शरीर की नस-नस को झकझोर रखा था। जिह्वा जड़ीभूत थी। नेत्र निर्निमेष, भौचक्के और विषय-शून्य थे। कर्त्तव्य—उसका संचालक, विवेक कहीं क्षितिज के उस पार खड़ा था।

वृद्धा—[रोती हुई] हाय! उन्हें कैसे देखूँ?

वृद्ध—[निश्वास लेकर] पिता-माता के अपार वात्सल्य के प्रति संतति की उपेक्षा विधि-विधान का चिरंतन रूप है।

वृद्धा—[कुछ सम्हलकर] परंतु उन बेचारों पर असावधानी का यह आरोप नहीं लगाया जा सकता।

वृद्ध—[वेग से निश्वास खींचकर] हाय, यदि वे कहीं समक्ष की आकृति के साथ अपनी भी आकृति देखकर मिलान कर सकते !

वृद्धा—[मिश्रित भाव से] और मैं तुम तोनों को एक साथ खड़ा देखकर अतींद्रिय जगत की मेड़ नाँघ जाती और फिर बिछुड़न से अभिशप्त इस संसार की ओर मुड़कर भी न देखती।

[वृद्धा शयनाधार पर मस्तक रखकर सिसक-सिसककर रोने लगती है। वृद्ध धीरे से लेट जाता है और वृद्धा के सिर पर हाथ रख लेता है।]

पटाक्षेप

कंगाल नहीं

(एक सत्य घटना पर एक एकांकी नाटक)

सेठ गोविंददास

[सेठ गोविंददास जी सुप्रसिद्ध राजनीतिक कार्य-कर्ता होने के साथ-साथ सफल साहित्यकार भी हैं। आपके कई नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें 'कर्त्तव्य', 'हर्ष', 'प्रकाश', 'नवरस' और 'कुलीनता' मुख्य हैं। आपके एकांकी नाटकों का संग्रह 'सप्तरश्मि' नाम से अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। आपके 'प्रकाश' नामक सामाजिक नाटक पर अखिलभारतवर्षीय साहित्य-सम्मेलन के द्वारा 'रतनकुमारी-पुरस्कार' भी प्राप्त हो चुका है।

सेठजी ने पहला एकांकी नाटक सन् १९३३ में नागपुर-जेल में लिखा था। आपकी भाषा बड़ी सरल होती है। नाटक विचारात्मक होते हैं। आप पर अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध नाटककार इब्सन की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।]

स्थान--सिलापरी गाँव में राजमाता का घर।

समय—संध्या।

[एक तरफ को राजमाता के घर की खपरेल परछी दिखाई देती है, जिसके कई खपरे टूट गये हैं। परछी में एक ओर घर के भीतर जाने का दरवाजा दिखता है, जिसके किवाड़ों की लकड़ी भी टूट गई है। यह दरवाजा खुला हुआ है और इसके अंदर घर के छोटे से मैले-कुचैले कोठे का एक हिस्सा दिखाई देता है। परछी के सामने मैदान है। मैदान के एक तरफ दूर पर गाँव के कुछ झोपड़े दिखते हैं और दूसरी तरफ खेत का एक हिस्सा, जिसमें छोटी-छोटी बिरल सूखी सी फसल खड़ी है। परछी में एक फटे से बोरे पर राजमाता बैठी हैं। उनकी उम्र करीब ५० साल की है। रँग साँवला है। मुख और शरीर पर कुछ झुर्रियाँ पड़ गई हैं। बाल आधे से अधिक सफेद हो गए हैं। शरीर बहुत दुबला-पतला है। शरीर पर वे एक मैली-सी लाल बुंदेलखंडी सूती साड़ी पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई है और जिसमें कई जगह थिगड़े लगे हैं। राजमाता के पास बड़ी रानी और मँझली रानी जमीन पर ही बैठी हुई हैं। दोनों साँवले रंग की हैं। बड़ी रानी की उम्र करीब पचीस वर्ष और मँझली रानी की करीब बीस वर्ष की है। दोनों युवतियाँ होते हुए भी कृश हैं और उनकी आँखों के चारों तरफ के गढ़ों और सूखे ओठों से जान पड़ता है कि उन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता। दोनों राजमाता के समान ही लालरंग की साड़ियाँ पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई और थिगड़ैल भी हैं। दोनों के हाथों में मोटी-मोटी लाख की एक-एक चुड़ी है। तीनों में बातचीत हो रही है। राजमाता की आँखों में आँसू भरे हैं।]

बड़ी रानी—कहाँ तक रंज करोगी, माँ! और रंज करने से फायदा ही क्या होगा?

राजमाता—जानती हूँ, बेटी, पर जानने से क्या होता है, जो बात रंज की है, उस पर रंज आये बिना नहीं रहता।

मँझली रानी—पर, माँ! जो बात बस की नहीं, उसपर रंज करना फजूल है।

राजमाता—बिना बस की बात ही तो जादा रंज पहुँचाती है।

[घर के भीतर से छोटे राजा और राजकुमारी हाथ में एक-एक तस्वीर लिए हुए आते हैं। छोटे राजा की उम्र करीब बारह वर्ष की है। वह साँवले रंग और ठिगने कद का दुबला-पतला लड़का है। एक मैली और फटी-सी धोती पहने है, जो घुटने के ऊपर तक चढ़ी है। ऊपर का बदन नंगा है। राजकुमारी करीब ८ साल की साँवले रंग की दुबली-पतली लड़की है। एक मैली-सी लाल रंग की फटी हुई साड़ी पहने है। साड़ी इतनी फट गई है कि उसके शरीर का अधिकांश हिस्सा साड़ी में से दिखता है।]

छोटे राजा—माँ, [राजकुमारी की ओर इशारा कर] यह कहती है दुर्गावती ने बावन गढ़ जीते थे, मैं कहता हूँ संग्रामशाह ने। फैसला तुम करो, मैं सच्चा हूँ या ये?

राजकुमारी—माँ, तुम फैसला कर दो, माँ।

राजमाता—बेटी संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते थे, दुर्गावती ने नहीं।

छोटे राजा—देखा, मैंने पहले ही कहा था, यह वीरता मर्द कर सकता है, औरत नहीं।

[राजकुमारी उदास हो जाती है।]

राजमाता—[राजकुमारी को उदास देखकर] उदास हो गई, बेटी, पर हमारे कुल में तो औरतें मर्दों से कम वीर नहीं थीं। संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते तो क्या हुआ, दुर्गावती उनसे कम वीर नहीं थीं।

बड़ी रानी—हाँ, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीतकर वीरता दिखाई तो दुर्गावती ने अपनी जान देकर।

मँझली रानी—हाँ, जीत में वीरता दिखाना उतना कठिन नहीं, जितना हार में।

[राजमाता रो पड़ती है]

बड़ी रानी—माँ, फिर वही, फिर वही।

छोटे राजा—[राजमाता के पास जाकर उनके निकट बैठकर] माँ, तुम रोती क्यों हो? मैं संग्रामशाह से भी जादा वीर बनूँगा। उसने बावनगढ़ जीते थे, मैं बावन शहर जीतूँगा।

राजकुमारी—[राजमाता के पास जाकर] और माँ मैं दुर्गावती से भी बड़ी वीर बनूँगी।

छोटे राजा—[संग्रामशाह की तस्वीर दिखाते हुए] देखो माँ, संग्रामशाह से मैं कितना मिलता-जुलता हूँ। अगर तुम मेरी इस फटी धोती की जगह जैसे कपड़े ये पहने हैं, वैसे पहना दो, मुझे तलवार मँगवा दो, और ऐसा ही घोड़ा खरीद दो, तो मैं अकेला बावन शहर जीत लाऊँ।

राजकुमारी—और माँ, देखो, मैं दुर्गावती से कितनी मिलती हूँ। अगर तुम मुझे भी दुर्गावती जैसे कपड़े पहना दो, हथियार मँगवा दो, और जैसे हाथी पर ये बैठी हैं, वैसा हाथी मँगवा दो, तो मैं भी दुर्गावती से बड़ी वीर बन जाऊँ।

[राजमाता के और अधिक आँसू गिरने लगते हैं।]

बड़ी रानी—[छोटे राजा और राजकुमारी को हाथ पकड़कर उठाते हुए] अच्छा, राजा जी और बाई जी, मेरे साथ चलो, मैं तुम दोनों की सब चीजें मँगा दूँगी।

[दोनों को लेकर बड़ी रानी घर के भीतर जाती है। मँझली रानी राजमाता के निकट सरककर अपनी फटी साड़ी से राजमाता के आँसू पोंछती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मँझली रानी—माँ, थोड़ा तो धीरज रखो।

राजमाता—बहुत जतन करती हूँ, बेटी, धीरज रखने के बहुत जतन करती हूँ। पर जब इन बच्चों को ऐसी बातें सुनती हूँ, तब तो हिरदे में ऐसा सूल उठता है जैसा भूखे पेट नंगे तन रहने पर भी नहीं। [कुछ ठहर कर] और बेटी, एक बात जानती है ?

मझली रानी—क्या माँ ?

राजमाता—ये बच्चे ही इन तस्वीरों को लिए घूमते हैं और ऐसा सोचते और कहते हैं, यह नहीं, तेरे मालक और बड़ी बहू के मालक भी जब छोटे थे तब वे भी इसी तरह इन तस्वीरों

को लिए घूमते और यही सब कहते फिरते थे और वे ही नहीं, मेरे मालक, उनके बाप और उनके बाप और उनके बाप सब यही सोचते और कहते थे ।

मझली रानी—आह !

[राजमाता लम्बी साँस लेती है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

राजमाता—बेटी, संग्रामशाह और दुर्गावती को पीढ़ियाँ बीत गईं । गिरती में सबने बढ़ती की सोची । बीती को सोचा, भवस के लंबे-लंबे विचार किये, पर बरतमान किसी ने न देखा और आज······[कुछ रुककर] आज, बेटी, बावन गढ़ के विजेता संग्रामशाह के कुल को बावन छदाम भी नसीब नहीं ।

[मँझले राजा का खेत की तरफ से प्रवेश । मँझले राजा की उम्र २२, २३ वर्ष की है । रंग साँवला और शरीर दुबला पतला तथा ठिंगना है । एक मैली और फटी-सी धोती को छोड़कर और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है । हाथ में थोड़े से गेहूँ के दाने हैं, जो बहुत पतले पड़ गये हैं । उन्हें देखकर मँझली रानी घर के भीतर चली जाती है ।]

मँझले राजा—[गेहूँ के दानों को राजमाता के सामने पटककर भर्राये हुए स्वर में] माँ, सब हार में झिरी पड़ गई है । बीज निकलना भी कठिन है ।

राजमाता—[लंबी साँस लेकर] तब······तब······तो वसूली भी न होगी ।

मँझले राजा—वसूली...वसूली...माँ, लगान तो इस साल सरकार ने मुल्तवी कर दिया।

राजमाता—[एकदम घबड़ाकर खड़े होते हुए] मुल्तवी हो गई ?

मँझले राजा—हाँ माँ, आज ही हुकुम आया है।

राजमाता—तो सिलापरी गाँव से जो एक सौ बीस रुपया बचते थे, वे भी न आयेंगे ?

मँझले राजा—इस बरस तो नहीं, माँ।

राजमाता—फिर हम लोग क्या खायेंगे, पियेंगे ?

मँझले राजा—पिनसन के सरकार एक सौ बीस रुपया साल देती है न ?

राजमाता—सात जीव एक सौ बीस रुपया साल में गुजर करेंगे ? महीने में दस रुपए एक जीव के लिए तीन पैसे रोज ?

मँझले राजा—बड़े भाई ने एक उपाय और किया है, माँ !

राजमाता—[उत्सुकता से] क्या बेटा ?

मँझले राजा—तुम धीरज रखकर बैठो तो बताऊँ।

राजमाता—[बैठते हुए] जल्दी बता, मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है।

मँझले राजा—माँ, अकाल के कारण सरकार ने काम खोला है न ?

राजमाता—हाँ, जहाँ कंगाल काम करते हैं।

मँझले राजा—पर जानती हो, माँ उन्हें क्या मिलता है ?

राजमाता--क्या ?

मँझले राजा--हमसे बहुत जादा। चार रुपया महीना, एक-एक को दो आने रोज।

राजमाता--अच्छा !

मँझले राजा--हम सात हैं। बड़े भाई ने अरजी दी है कि हम सब को अकाल के काम में जगह दी जाय। माँ, वह अरजी मंजूर हो गई तो हममें से एक-एक को दो-दो आने रोज, सुना, दो-दो आने रोज, सबको मिलाकर अट्ठाईस रुपया महीना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल, सुना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल मिलेगा।

[बड़े राजा का खेत की ओर से प्रवेश। वे अपने भाई से मिलते-जुलते हैं। करीब २८ वर्ष की उम्र है। वेषभूषा उन्हीं के सदृश है। वे अत्यंत उदास हैं। आकर राजमाता के पास बैठ जाते हैं।]

राजमाता—बेटा, मँझला कहता था कि तू ने सरकार को एक अरजी दी है ?

बड़े राजा—[लंबी साँस लेकर] हाँ दी थी, माँ।

राजमाता—[उत्सुकता से] फिर क्या हुआ, बेटा, मंजूर हो गई ?

बड़े राजा—नहीं।

मँझले राजा—नहीं हुई, तो हम कंगालों से भी बदतर हैं ?

बड़े राजा—इसीलिए तो नहीं हुई कि हम कंगालों से कहीं बढ़कर हैं।

राजमाता—बेटा, तेरी बात समझ में नहीं आती।

बड़े राजा—हाँ हमें पिनसन मिलती है, हम महाराजाधिराज राज-राजेश्वर संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं, हमारी बड़ी इज्जत है, हमारा बड़ा मान है, हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज हो हो, पर हमें कंगालों की रोजनदारी, दो आना रोज कैसे मिल सकती है ? हमारी भरती कंगालों में कैसे को जा सकती है ?

[बड़े राजा ठठाकर हँसते हैं और लगातार हँसते रहते हैं। राज-माता के आँसू बहते हैं और मँझले राजा उद्विग्नता से बड़े राजा की ओर देखते हैं।]

यवनिका-पतन

समाप्त

बड़े आदमी की मृत्यु
पं० उदयशंकर भट्ट

[पं० उदयशंकर भट्ट भी हिन्दी के ख्यातनामा रूपककार हैं। इनके पौराणिक नाटक बड़े ही प्रभावशाली बन पड़े हैं। वस्तु, नेता और रस के समन्वय के साथ ही साथ आधुनिक चरित्र-चित्रण की शैली भी बड़ी मार्मिकता से इनके नाटकों में नियोजित हुई है। हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में जो स्थान बा० जयशंकर 'प्रसाद' और हरिकृष्ण 'प्रेमी' का है वही पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में इनका माना जाता है। इनके एकांकी नाटकों का संग्रह 'स्त्री का हृदय' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें इन्होंने आधुनिक जीवन के यथार्थ और मर्मस्पर्शी चित्र खींचने का पूर्ण प्रयास किया है। इनकी भाषा चलती होती है, जिसमें विभाषाओं के शब्द भी बेखटके रख दिये जाते हैं।]

बड़े आदमी की मृत्यु

[नगर की एक कोठी का सामना। भीतरी भाग २०–२५ का कमरा। उसके सामने बरामदा उतना ही बड़ा। कमरे के सब दरवाज़े, जिनकी संख्या तीन है, खुले हुए हैं। उनसे भीतर का सब दृश्य दीख रहा है। दक्षिण की तरफ़ से उत्तर की तरफ़ पश्चिम-पूर्व को एक पलँग बिछा है। सिरहाने छोटी मेज़ पर कुछ दवा की शीशियाँ, थर्मामीटर, शीशे का गिलास, नीचे पलँग के पास बड़ी चिलमची, बीमार के पास अन्य आवश्यक सामान रखा है। दो कुर्सियाँ रखी हैं। उनके पास ही तिपाई पर टेलीफ़ोन रखा है। बीमार एक राय बहादुर हैं, नगर के प्रतिष्ठित सेठ। बहुत दिनों से बीमार चले आ रहे हैं, पर केस ख़राब हो जाने के कारण लोगों को मालूम हो रहा है कि बस अब चलाचली का समय है। सेठ की नाक में ऑक्सीजन की नाली लगी है, उसके पास उसका समान। एक नर्स सिरहाने खड़ी बीमार की अवस्था देख रही है। पास ही सेठ के छोटे भाई एक कुर्सी पर बैठे हैं। उसकी बग़ल में सेठ

का बीस साल का लड़का खड़ा है जो सोते-सोते एक दम उठाकर लाया गया है। पैरों की तरफ़ सेठ की स्त्री हाथ में चाबियों का गुच्छा लिये पति की ओर देख रही है, इसी तरह अन्य दो तीन स्त्रियाँ भी खड़ी हैं। टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। चाचा भतीजे दोनों बढ़ते हैं पर लड़का रिसीवर उठा लेता है। लड़के का नाम है राजकिशोर और चाचा का नाम है बिहारीलाल, समय चार बजे प्रातःकाल]

राजकिशोर—(शांत स्वर में) हैलो, हैलो, हाँ क्या कहा ? आॅक्सीजन दी जा रही है उससे कोई लाभ नहीं हो रहा है।

बिहारीलाल—कौन है राजकिशोर ?

राजकिशोर—(रिसीवर हटाकर) डाक्टर साहब हैं।

बिहारीलाल—(टेलीफ़ोन के पास जाकर) लाओ मुझे दो। (लेकर) हाँ, डाक्टर साहब, मैं बिहारीलाल बोल रहा हूँ, बिहारीलाल। देखिये, आॅक्सीजन बराबर दी जा रही है, पर, फ़ायदा अभी कुछ नज़र नहीं आ रहा है। हाँ मिस जोन हैं। वे रात भर देखती रही हैं। अब भी भैया के पास ही हैं। हाँ, बेहोशी अभी दूर नहीं हो रही है, कभी-कभी चौंक-से पड़ते हैं, मालूम होता है होश में आ रहे हैं, पर फिर उसी अवस्था में देख पड़ते हैं (इतने में बीमार जागता-सा दिखाई देता है सब लोग दौड़कर ध्यान से बीमार की चेष्टा देखते रहते हैं।) हाँ, अच्छा आप एक बार आकर स्वयं क्यों नहीं देख लेते ? हाँ, आइये (रिसीवर रखकर चला जाता है)

बीमार—(कराहकर) उँह, उँह, हाय ! राज ! बेटा राज ! राज कहाँ है ?

राजकिशोर—(आगे बढ़कर) मैं यह हूँ बाबू जी ! (पास ही पिता की खाट पर बैठ जाता है ।)

बीमार—तुम आ गये बेटा ? (सिर पर हाथ रखकर) मेरा राज ! बिहारी कहाँ है ? बिहारी, बिहारी !

बिहारीलाल—(पास जाकर) कहिये, भाई साहब ! डाक्टर को बुलाया है, अभी आते ही होंगे ।

बीमार—अब डाक्टर को आवश्यकता नहीं है, बिहारी ! मैं जा रहा हूँ, बस थोड़ी देर है । हाय ! जी की जी में रह गई । बेटा, भाई ।

पत्नी—(पास जाकर) घबराओ मत ठीक हो जाओगे । डाक्टर आ रहा है ।

बीमार—नहीं, अब डाक्टर की जरूरत नहीं है । मेरा डाक्टर अब ईश्वर है, ईश्वर (आँखें बंद करके थोड़ी देर पड़ा रहता है, फिर खोलकर) यह नाली हटाओ, हटाओ इसे ।

नर्स—(आगे बढ़कर) इसे लगा रहने दीजिये, इसी से आपको फ़ायदा हुआ है, होश आया है, रहने दीजिये ।

बीमार—(नर्स को देखकर) नहीं, अब मैं यह नहीं चाहता, तुम जाओ नर्स, जाओ ।

(ऑक्सीजन की नाली नाक से निकालकर, फेंक देता है)

सब—(आश्चर्य से) यह क्या किया, यह क्या किया ?

बीमार—तुम सब हट जाओ, हटो।

बिहारी—सब लोग चले जाओ, जाओ।

(सब हटते हैं केवल राज, उसकी माता और बिहारीलाल रह जाते हैं) भाई साहब, वह गणेशगंज की मिल के काग़ज़ कहाँ हैं? उसके शेयरों का हिसाब करना है, बताइये।

राजकिशोर—बाबू जी! मेरे विलायत जाने के लिये जो आपने सोचा था, चाचाजी अब नहीं जाने देना चाहते।

पत्नी—मुझसे क्या कहते हो?

बीमार—यह समय ईश्वर के नाम लेने का है, किसी पंडित को बुलाकर (चुप हो जाता है) तुम लोगों से इतना भी नहीं होता?

पत्नी—(दौड़कर) रजनी, रजनी! पंडित को बुला बेटा, गीता सुनावे।

बिहारीलाल—विलायत जाकर फ़िज़ूल रूपया ख़राब करना है, इसीलिये कहा, पर हाँ, गणेशगंज वाले काग़ज़ तो बताइये, भाई साहब!

बीमार—हे राम! हे शिवशंकर! तुम्हीं हो। पंडित जी नहीं आए, थोड़ी देर का है सब कुछ। राज प्रसन्न रहना बेटा! (बिहारी से) देखो, इसकी देखभाल तुम्हें ही करनी है। यह सब कमाई मेरी है, तुम···(राजाराम का दौड़ते हुए प्रवेश)

राजाराम—कैसी तबीअत है भाई साहब?

बीमार—भाई थोड़ी देर का हूँ (पंडित आकर दूर बैठ जाता है और गीता पढ़ने लगता है। बीमार चुप-चाप सुनने लगता है, उसकी अवस्था बिगड़ने लगती है।)

राजाराम—अब अंत दिखाई देता है।

राजकिशोर—विलायत का कुछ निश्चय नहीं हुआ।

बिहारीलाल—गणेशगंज के काग़ज़ों का कुछ भी पता न लगा, न जाने किसके पास हैं। सोचा था कि कभी समय मिलते ही पूछ लूँगा, यदि काग़ज़ न मिले तो मिल चौपट हो जायगी, (चिंता में टहलने लगता है)

पत्नी—मुझसे कुछ भी नहीं कहते। (गुम-सुम-सी हो जाती है)

(बीमार का रूप बिगड़ता जा रहा है, उसे नीचे उतार लिया जाता है, गीता-पाठ ज़ोर-ज़ोर से होने लगता है, शांति और भयावना-सा मालूम होता है, वह एक दम साँस तोड़ देता है, घर में कुहराम मच जाता है, सब लोगों को पास वाले कमरे में भेज दिया जाता हैं इसलिये वहाँ से रोने की आवाज़ आती रहती है।)

राजाराम—देखो, राय बहादुर एक बहुत बड़े आदमी थे।

बिहारीलाल—हाँ, आज प्रातःकाल ही समाचार पत्रों में उनका चित्र प्रकाशित हो जाना चाहिए, मैंने अपने मैनेजर से कहकर उनका जीवनचरित्र भी पत्रों को भेज दिया है, ऐसा न हुआ तो लोग क्या कहेंगे ?

राजकिशोर—(रोकर) पहले विलायत का फ़ैसला कर दीजिये।

राजाराम—टेलीफ़ोन करूँ। (रिसीवर उठाकर और डायल घुमाते

हुए) हलो, सेठ मधुसूदन की कोठी से बोल रहा हूँ, सेठ मधुसूदन की कोठी से बोल रहा हूँ। राजाराम, राजाराम, उन्हीं का संबंधी हूँ। देखिये, सेठ जी का इस समय देहांत हो गया है। उनका चित्र और एक नोट आज ही सबेरे के पत्र में प्रकाशित होना चाहिए। हाँ, एक चित्र और संपादकीय नोट, उनके भाई चाहते हैं कि, आपके पत्र में प्रकाशित हो जाय। क्या कहा, अब समय नहीं है ?

बिहारीलाल—लाओ टेलीफ़ोन मुझे दो। मैं बात करता हूँ। देखिये, हेलो, मैं बिहारीलाल बोल रहा हूँ। राय बहादुर सेठ मधुसूदन का देहांत हो गया है। उनका चित्र और एक नोट इसी सबेरे के पत्र में प्रकाशित होना चाहिये। हाँ, एक चित्र और संपादकीय नोट, क्या कहा, अब समय नहीं है ? पर यह तो बहुत ज़रूरी है। लोग क्या कहेंगे ? ज़रूरी है, बहुत ज़रूरी, कृपा करके अवश्य छापिये। और सात बजे के लगभग एक संवाददाता को भेज दीजिये।

राजकिशोर—लोगों को ख़बर करनी चाहिये। अर्थी तो शान की ही होगी।

पत्नी—(आकर) उनके ऊपर कपड़ा तो डलवा दो, लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?

बिहारीलाल—हाँ कपड़ा तुम डलवा दो। हमें और काम भी तो करना है, जाओ। और देखो, स्त्रियों के बैठने का भी प्रबंध करा दो। शायद बहुत-सी स्त्रियाँ आवें। जाओ, एक दरी

बिछवा देना। घसीटा, बिरजू, दासू कहाँ हैं बुलाओ उनको, बुलाओ। (तीनों नौकर रोते हुए आते हैं) देखो रोने का समय नहीं है। कोठी के आगे की सड़क ठीक करा दो। भंगियों को अभी जगाकर सब जगह साफ़ कराओ। बड़े-बड़े आदमी आवेंगे। ऐसा न हो कहीं कूड़ा-करकट रह जाय। कुछ कुर्सियाँ भी तैयार रखना। बिरजू, तुम भाभी की निगाह के सामने रहना। घसीटा, तुम मैनेजर को बुलाओ।

घसीटा—छोटे बाबू! डाक्टर साहब आए थे। जब उन्होंने बाबूजी की (रोकर) सुनी, तब लौट गए। हाय, कैसे अच्छे थे मालिक! (रोता है)

बिरजू—कभी एक बात नहीं कही। हम चाहे जो कुछ करते रहे, लुटाते रहे या बिगाड़ते रहे, पर सदा हँसकर बातें करते थे, हाय, ऐसा मालिक कहाँ मिलेगा!

घसीटा—मेरे तो भाग ही फूट गए। बचपन से मुझे पाला था, बड़ा किया, ब्याह किया। मालिक नहीं साच्छात् ईश्वर के औतार थे। (रोता है)

बिहारीलाल—तुमसे जो कहा, वह काम करो। रोने का समय नहीं है। सारी ज़िंदगी रोने को पड़ी है। जाओ, (डाटकर) सुना नहीं? लोग आते होंगे।

तीनों—अच्छा, छोटे बाबू।

बिहारीलाल—ख़बरदार! अब कभी छोटे बाबू कहा। अब मैं

मालिक हूँ घर का। जाओ!

तीनों—बहुत अच्छा छोटे···नहीं···मालिक। (जाते हैं)

राजाराम—दुशाला ओढ़ाने को बहुत अच्छा होना चाहिये, लोग आवेंगे, देखेंगे तो क्या कहेंगे। अरे बिहारीलाल, कोई दुशाला-उशाला नहीं है? जाओ राज, भाभी से जाकर कोई बढ़िया-सा दुशाला ऊपर डालने को ले आओ।

पत्नी—वह दुशाला तो···

बिहारीलाल—क्या सोच रही हो? ज़रा जल्दी करो! लोग आ गए तो मुसीबत पड़ जायगी, लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे। जाओ!

पत्नी—मेरा दुशाला तो पुराना है नया मँगा लो न बाज़ार से।

बिहारीलाल—(सिटपिटाता हुआ) बाज़ार से आने में देर होगी। (घड़ी देखकर) पौने छः हुआ चाहते हैं। मैनेजर भी तो नहीं आया। हाय! मैनेजर क्या मर गया। बहुत काम पड़ा है। लोग आते होंगे। (मैनेजर का प्रवेश) देखो घन-श्याम बाबू, तुमने बहुत देर कर दी। तुम्हें मालूम था कि भैय्या की तबीअत ख़राब है फिर भी तुम घर चले गए। यह ठीक नहीं है। समझे।

घनश्याम—छोटी लड़की को रात कालरा का 'अटेक' हो गया साहब, उसकी हालत जब-तब हो रही है, ऐसे में मेरा वहाँ रहना ज़रूरी है।

बिहारीलाल—(डपटकर) ज़रूरी है, ज़रूरी कैसे है? भैय्या का

काम, यहाँ का काम ज़रूरी है या लड़की के मरने का? तुम अब नहीं जा सकते, समझे। वे काग़ज़ कहाँ हैं? एक चित्र और उनका जीवनचरित्र, जो तुमने लिखा था, लेकर अभी अख़बारों के दफ़्तरों में जाओ। और देखो, वे पत्र और भैय्या का चित्र उनमें छप जाय। और मेरा भी एक चित्र लेते जाओ। उसके नीचे छपा हो राय बहादुर सेठ मधुसूदन के भाई सेठ बिहारीलाल। हाँ जाओ। समझे?

घनश्याम—पर लड़की का केस तो बहुत ख़राब हो रहा है साहब, घर पर और कोई है भी नहीं।

बिहारीलाल—नहीं, मैं इस समय यह सब नहीं सुन सकता, नौकर न रहना हो तो जाओ। और भाई राजाराम, लोग आनेवाले हैं तुम अपने स्कूल के मास्टरों से कहो कि वह मास्टरों को लेकर यहाँ आ जायँ और इतना और कह देना कि सब मास्टर और हेडमास्टर कतार बाँधकर कोठी की सड़क के पास खड़े हो जायँ। ओः बहुत काम है।

(घनश्याम, राजाराम जाते हैं, घसीटा आता है)

घसीटा—मालिक, मालिक! (एक तरफ़ खड़ा हो जाता है)

बिहारीलाल—हाँ, क्या है? बोल, जल्दी बोल। लोग आनेवाले हैं।

घसीटा—घीसा भंगी नहीं आ सकता। उसके घर बच्चा हुआ है। मैंने बहुत कहा पर वह कह रहा है कि 'ऐसी हालत में

उसे छोड़कर कैसे आ सकता हूँ !'

बिहारीलाल—उसे आना ही पड़ेगा, जाओ बुलाओ उसे। गधे कहीं के। आज ही बच्चा होने को था। उसे बुलाओ, उसे आना ही पड़ेगा। नालायक़, पाजी कहीं का (दासू का प्रवेश)

दासू—सरकार, वह सड़क साफ़ कर रहा है।

बिहारीलाल—हाँ, ठीक है, जाओ। देखो लोग आ रहे हैं क्या ? (राजकिशोर से) राज, बेटा राज !

राजाराम—क्या है चाचा जी ?

बिहारीलाल—तुम बरामदे में बैठो। लोग आते होंगे (घड़ी में देखकर) छः बजा है। देखो, अख़बारों को टेलीफ़ोन करो और पूछो कि रायबहादुर साहब के संबंध में ख़बर छप रही है क्या ? पूछना उनका रिपोर्टर कब आ रहा है, हाँ जाओ, (अपने आप) सब ठीक है। ओ, मेरा दिमाग़ भी कैसा है। इस समय भैया की मृत्यु का सवाल नहीं है बल्कि सवाल है अपनी प्रतिष्ठा का। (राजाराम का प्रवेश)

राजाराम—स्कूल के मास्टरों का प्रबंध करा दिया है। आते ही होंगे। इसके साथ ही मंदिरों के पुजारी, पुरोहित और ब्राह्मणों को भी कहलवा दिया है। कई आदमी दौड़ाए हैं।

बिहारीलाल—अब क्या काम है ?

राजाराम—भाई साहब की फ़ोटो का प्रबंध। श्मशान का प्रबंध।

बिहारीलाल—डेल्टन को बुलाओ ! बालो कैसा रहेगा ?

राजाराम—नहीं, अंग्रेज़ फ़ोटोग्राफ़र का आना ज़रूरी है नहीं तो लोग क्या समझेंगे। इससे कहना पड़ेगा कि दो फ़ोटो उतारी जायँ। एक तो केवल भाई साहब की और दूसरी यात्रा की, उस समय तुम साथ रहना। राजकिशोर और तुम; दाएँ और बाएँ, समझे।

बिहारीलाल—हाँ, उसे अभी बुलाओ। पत्रों के संवाददाता अभी नहीं आये? लोग आनेवाले हैं। क्या किया जाय बहुत काम है। मैनेजर भी नहीं आया, न मालूम पत्रों के समाचार का क्या हुआ।

राजाराम—मैंने पत्रों के सब संपादकों से कहा है उन्होंने जवाब दिया है कि हम शक्तिभर प्रयत्न करेंगे कि आपके समाचार दिये जा सकें। चित्र भी प्रकाशित हो जाय, शायद नोट न जा सकेगा।

बिहारीलाल—उनसे कहना था पत्र आज ज़रा देर से निकालो। शहर के छोटे आदमी का तो देहांत हुआ नहीं है, बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। देखो एक आदमी की ड्यूटी टेलीफ़ोन पर लगा दो। (टेलीफ़ोन की घंटी बजती है) जाओ देखो क्या है। डाक्टर बिना मिले ही चला गया। बड़ा पाजी है। बीस हज़ार के क़रीब उसे दिया है।

राजाराम—वह अब आवेगा। देखो शोक प्रकट करने के लिये लोग आने लगे हैं, मोटरों की आवाज़ें आ रही हैं, सुना तुमने, सुन रहे हो न?

बिहारीलाल—हाँ, राज, पुलिस सुपरिंटेंडेंट को ख़बर कर दो कि रायबहादुर सेठ मधुसूदन का आज देहांत हो गया है, भीड़ बहुत होगी इसलिये ट्राफ़िक कंट्रोल करने के लिये कुछ सिपाहियों को भेज दें। समझे, हाँ जाओ। (राज जाने लगता है) राज तुम न जाओ, राजाराम तुम जाओ। ज़रा जल्दी करना। लोग आ रहे हैं। (मैनेजर का प्रवेश)

घनश्याम—सब कुछ ठीक कर आया हूँ, पर मेरी लड़की...

बिहारीलाल—अच्छा, जब तक संवाददाता न आएँ तब तक तुम खड़े होकर देखना कौन-कौन आ रहे हैं, उनके नाम नोट कर लेना। जो बड़े आदमी हों सिर्फ़ उन्हीं के नाम नोट करना; वे सब अख़बारों को भेजे जाएँगे, समझे?

घनश्याम—(मन मारकर) अच्छा। (दोनों बिहारी और राज बरामदे में आकर बैठ जाते हैं कुछ और भी घर के आदमी आकर बैठ जाते हैं। मोटरों के आने की आवाज़ें सुनाई देती हैं)

बिहारीलाल—सब लोग तैयार रहो। लोगों के आने का समय हो गया है। घनश्याम!

घनश्याम—(पास जाकर) जी।

बिहारीलाल—तुम्हें याद है जो मैंने कहा?

घनश्याम—हाँ।

बिहारीलाल—(एक दम ज़ोर से पैर पटककर) हाँ कहते हो, ज़रा तमीज़ नहीं है। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। समझे? आगे से ध्यान रखना। (राजकिशोर से) जब लोग अफ़सोस

करावें तो आँखों में आँसू ज़रूर आने चाहियें। फूट-फूट-कर रोने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, तो तैयार रहो, देखो वह कोई आ रहा है। (कुछ लोग शोकमुद्रा से बरामदे के पास आते हैं। घनश्याम एक हाथ में काग़ज़ तथा पेंसिल लेकर एक तरफ़ खड़ा हो जाता है।

पहले रायबहादुर—(सामने आकर) बड़ा दुख हुआ। एकदम अचानक यह कैसे हो गया?

बिहारीलाल—(चुप-चाप रुआसा मुँह करके आँसू पोंछता है।)

दूसरे—अफ़सोस तो होता ही है, क्या किया जाय। भाग्य की बात है नहीं तो अभी रायबहादुर साहब की अवस्था ही क्या थी?

राजाराम—हमारे तो भाग्य ही फूट गए साहब। (राज रोता है)

दूसरा—यही रायबहादुर साहब के लड़के हैं?

राजाराम—जी।

पहले—इन बिचारों को भी कितना दुख हुआ है।

दूसरे—पहाड़ ही टूट पड़ा, नहीं तो उम्र ही क्या थी। (एक और रायबहादुर आते हैं।)

रायबहादुर—सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ। लजवाब आदमी थे, ऐसे आदमी संसार में मिलते कहाँ हैं?

बिहारीलाल—(आँखों में आँसू भरकर) हमारे तो भाग्य ही फूट गए।

रायबहादुर—हर चौथे दिन मुझसे कहीं न कहीं भेंट हो ही

जाती थी। कितने प्रेम से मिलते थे, सब दिल की बात कह डालते थे। क्या कहूँ साहब, मेरा तो दाहिना हाथ टूट गया।

(तीसरे रायबहादुर का प्रवेश)

तीसरे रायबहादुर—हाय ! यह क्या हुआ है भाई बिहारीलाल, (आँसू पोंछकर) हम दोनों को एक ही साल रायबहादुरी का ख़िताब मिला था।

राजाराम—क्या किया जाय। जो कुछ हो सकता था सभी किया। इन लोगों ने रुपया पानी की तरह बहाया। दो-दो नर्सें, चार-चार डाक्टर, कोई वैद्य, डाक्टर, हकीम नहीं छोड़ा।

पहले रायबहादुर—अरे बीमारी क्या छोटी थी ! पर ईश्वर को शायद यही मंजूर था। (बनावटी आँसू पोंछता है) अभी उस दिन मिले थे। कितने हट्टे-कट्टे मज़बूत आदमी।

बिहारीलाल—हमारे तो सब प्रयत्न बेकार गए। (आँसू पोंछता है)

(दो प्रोफ़ेसर आते हैं)

पहले प्रोफ़ेसर—वेरी सौरी मिस्टर बिहारीलाल। रायबहादुर साहब बहुत अच्छे थे।

दूसरे प्रोफ़ेसर—ओः व्हाट ए हार्ट रेंडिंग न्यूज़ ! (O what a heart-rending news !) और मुझे देखकर तो सदा पूछते थे कि देश की एकोनोमिकल कंडीशन किस तरह ठीक हो सकती है प्रोफ़ेसर ! प्रायः हम लोगों की बातों का

यही टापिक रहता था।

पहले प्रोफ़ेसर—हिस्ट्री में तो उनकी बहुत ही दिलचस्पी थी। पिछले दिनों अशोक के ऊपर मेरा आर्टिकल पढ़कर उन्होंने मुझसे कहा प्रोफ़ेसर, तुम्हारा इतिहास का ज्ञान बहुत अच्छा है।

दूसरे प्रोफ़ेसर—अर्थशास्त्र पर जब मेरी पहली किताब प्रकाशित हुई थी तब उन्होंने मुझे बधाई दी थी (एक कालेज का प्रिंसिपल आता है)

प्रिंसिपल—बड़ा दुख हुआ रायबहादुर साहब की मृत्यु का समाचार सुनकर। क्या उनको कोई बीमारी हुई थी? मालूम तो नहीं हुआ। हमारे कालेज के साथ तो उनका बहुत लव था। हमेशा मुझसे कालेज के बारे में बात करते थे। लड़कों के चरित्र पर उनका ध्यान अधिक था।

पहले रायबहादुर—ऐसा आदमी अब कहाँ मिलेगा।

दूसरे रायबहादुर—मेरी तो बाँह ही टूट गई (दूसरे से धीरे-से) तुम अभी आए हो?

पहले रायबहादुर—हाँ, अभी। ख़बर तो पहले ही सुन ली थी, पर जैसा कि नियम है सैर को गया, आकर चाय पी, फिर मोटर लेकर इधर आया।

दूसरे रायबहादुर—मैं भी सुन तो पहले ही चुका था, पर घर का कुछ ज़रूरी काम था। वह कोठी जो अपनी बन रही है, उसकी बाबत कुछ ठीकेदार को सलाह देनी थी, उसे

बुलाया, सब तरह से समझाया, फिर नहाकर थोड़ा दूध पिया और इधर आया। (यूनिवर्सिटी के एक ओहदेदार का प्रवेश)

ओहदेदार—सुनकर बड़ा दुःख हुआ। मैंने तो कोई पंद्रह दिन पहले उन्हें सैर करते देखा था, दुआ-सलाम हुई, उस समय तो उनकी तबीअत ख़राब नहीं थी, क्या हुआ एका-एक।

राजाराम—बीमार तो वे एक महीने से थे। बाहर तो कहीं गए ही नहीं।

ओहदेदार—(याद करके) ओः भूला, वे दूसरे रायबहादुर थे जो उस दिन मिले थे, अच्छा तो क्या हुआ था ?

बिहारीलाल—एपेंडिसाइटस था।

ओहदेदार—ओः आई सी ! फिर भी बहुत दुःख हुआ। (भीड़ अधिक हो जाने के कारण लोग बाहर दालान में खड़े होते जा रहे हैं, एक मिनिस्टर आते हैं लोग चौकन्ने हो जाते हैं)

मिनिस्टर—निहायत अफ़सोस हुआ सुनकर। मैंने तो अभी सुना, दंग रह गया। मैं सोच रहा था उन्हें अपनी ऐजूकेशन सब कमिटी में लूँगा। उस दिन उनकी तक़रीर सुनकर ही मैंने फैसला कर लिया था। उस दिन हमारे ऐजूकेशन बिल पर तो साहब वे निहायत उम्दा बोले। बहुत अच्छे आदमी थे।

एक रायसाहब—ऐजूकेशन बिल पर तो उस दिन मैं बोला था, मिनिस्टर साहब ! आपने मुझे कमिटी में ले लेने का वायदा किया था।

मिनिस्टर—(भौचका-सा होकर और क्रोध से उसकी ओर देखकर) हलो, रायसाहब तुम भी उस कमिटी के लिये चुने जाने वाले थे पर इस समय तो इस रायबहादुर का ज़िक्र कर रहा था। बहुत अच्छे आदमी थे और सबसे ज्यादा सरकार के खैरख़्वाह।

कई आदमी—जी।

एक रायसाहब—पर अब तो उनके भाई हैं सेठ बिहारीलाल।

मिनिस्टर—तो इनको असेंबली के लिये खड़ा करो। मैं हर तरह से मदद दूँगा। (हट जाता है)

बिहारीलाल—बहुत धन्यवाद। (चुप हो जाता है)

(दो संपादकों का प्रवेश)

एक संपादक—रायबहादुर साहब की मृत्यु का बहुत दुख है। आपका टेलीफ़ोन गया था, पर हम लोगों की मजबूरी है कि पेपर उस समय आउट होनेवाला था इसलिये सिर्फ़ समाचार भर जा सका है। नोट मैं कल दूँगा।

दूसरा संपादक—मैंने तो चित्र दे दिया है, नोट मैं भी कल दूँगा।

राजाराम—क्या ऐसा नहीं हो सकता कि उनके संबंध में बराबर कुछ न कुछ कम से कम एक सप्ताह तक निकलता रहे ?

पहला संपादक—हाँ, क्यों नहीं ! लिखवाकर भिजवाइये, हम छाप देंगे, पर देखिये (कान में) विज्ञापन भी उनकी मिल का और बैंक का हमारे ही पेपर में निकलना चाहिये।

राजाराम—मेरा ध्यान रहेगा। मैं सेठ बिहारीलाल से कह दूँगा, आप निश्चित रहिये।

(कुछ पंडित, ब्राह्मण आते हैं)

सब ब्राह्मण—अत्यंत ही खेद है। रायबहादुर साहब तो साक्षात् धर्म के अवतार थे।

एक याज्ञिक—यज्ञ के प्रेमी। चाहते थे बड़े-बड़े यज्ञ हो सकें। उसके लिये उन्होंने कई बार हमसे प्रार्थना की।

दूसरे वेदपाठी—अरे साहब, राय बहादुर साहब को, आपको सुनकर आश्चर्य होगा वेद के कई सूक्त कंठ थे। उन्होंने पंडितों की सभा में सुनाए भी थे। हम तो सुनकर आश्चर्य-चकित रह गए।

एक कर्मकांडी—ऐसा कर्मनिष्ठ और कर्मकांडी तो मैंने देखा ही नहीं। संध्या, तर्पण, उपासना सभी करते थे।

एक पुजारी—राज-मंदिर में भगवान के दर्शन करने आते थे, दोनों समय कमलनेत्र, विष्णुसहस्रनाम, गोपालसहस्रनाम सब का पाठ करते थे, घंटों मंदिर में पूजा करते, ऐसा आदमी तो होना कठिन है।

एक शास्त्री—अब तो कलियुग है। ऐसी विभूतियाँ अब कहाँ। मेरे साथ कई बार दर्शनों पर बातचीत हुई। यह ठीक है दर्शनों का ज्ञान उन्हें थोड़ा था पर बुद्धि तो बड़ी तीव्र थी।

(दो वकील आते हैं और बाकी चले जाते हैं)

पहला वकील—बड़ा अफ़सोस है साहब !

दूसरा वकील—इसमें क्या शक है। बड़े ही समझदार थे। ऐसे रायबहादुर बहुत कम मिलेंगे। कानूनी बातों का तो उन्हें इतना नौलिज था कि कई एक्ट तो उन्हें जैसे हिफ्ज़ याद हों। एक बार कचहरी में जज के सामने जिरह हो रही थी, उन्होंने एक पाइंट पर जज साहब की कलम पकड़ ली, हम लोग तो सन्नाटे में आ गए।

पहला वकील—तुम्हें तो यही मालूम है मैं तो उनका वकील रहा हूँ। कई लोगों को तो उन्होंने मुकदमे में बनाकर नाकों चने चबवा दिये। कुछ और ज़िंदा रहते तो बेशक़ कानूनी व्यवस्था के बनवाने में उनसे बहुत सहायता मिलती! निहायत अफ़सोस है!

(एक डाक्टर आता है)

डाक्टर—मैं तो सुनकर जैसे हैरान रह गया। कभी-कभी मुझसे मिलते तो डाक्टरी विषयों पर बहस करते। अभी एपेंडेसाइटस के आपरेशन के वक्त उन्होंने मुझे कई नई सलाहें दीं। और मुझे तो साहब मानना पड़ा कि उनका नालिज डाक्टरी में कम नहीं था।

बिहारीलाल—इसमें क्या शक है, हमारे तो वे सब कुछ थे।

राजकिशोर—(रोकर) हाय, बाबूजी!

डाक्टर—रोओ मत बेटा, लेकिन अब तो जनम भर रोना ही है। क्या किया जाय। बस यहीं डाक्टर की अक़्ल काम नहीं करती। वर्ना कौन सी चीज़ है जिस पर इंसान ने

क़ाबू नहीं पाया। (गवर्नर का प्राइवेट सेक्रेटरी आता है, सब लोग उठकर खड़े हो जाते हैं और आगे बढ़कर)

सेक्रेटरी—(लिफ़ाफ़ा देते हुए) जनाब गवर्नर साहब को राय-बहादुर साहब की मृत्यु का बहुत अफ़सोस है। बड़े सरकार-परस्त थे रायबहादुर साहब। वारफंड में उन्होंने काफ़ी चंदा दिया।

बिहारीलाल—(सिर झुकाकर) लिफ़ाफ़ा लेते हुए। बहुत ही धन्यवाद है गवर्नर साहब का वर्ना हम किस लायक़ हैं। हम तो उनके गुलाम हैं (सेक्रेटरी चला जाता है और एक फ़िलासफ़र आता है)

फ़िलासफ़र—निहायत दुख है रायबहादुर साहब की मृत्यु पर।

बिहारीलाल—क्या किया जाय साहब, हमने अपनी तरफ़ से कुछ भी बाक़ी नहीं रहने दिया।

फ़िलासफ़र—हाँ साहब यह सब नेचुरल (Natural) है। इट इज़ इनएविटेबल (It is inevitable) वन हैज़ टु लीव दी वर्ल्ड ऐसेंशियेली (One has to leave the world essentially) लेकिन रायबहादुर साहब बड़े समझदार थे। कई बार उनसे मेरी बात-चीत हुई, थे पक्के एथिस्ट। हर एक समझदार आदमी नास्तिक होता है क्योंकि दुनियाँ का यह क्रियेशन (Creation) बिल्कुल आटोमेटिक (Automatic) है। बहुत कम लोग हैं जो इन बातों को ठीक-ठीक समझ पाते हैं गो यह चीज़ है क़तई नेचुरल

(Natural)। चलो अच्छा हुआ दुनियाँ के झंझटों से फुरसत पा गए। हालांकि मुझे अफ़सोस बहुत है। और अफ़सोस तो होना ही चाहिये। आप लोग भी बेचारे परेशान हो रहे हैं लेकिन किया क्या जाय। जो मिलता है वह टूटता है, जो खिलता है वह मुर्झाता है, जो पैदा होता है वह मरता है। निहायत अफ़सोस है साहब। (चला जाता है)

राजाराम—फ़िलासफ़र हैं, न जाने क्या-क्या बक गए। अब उठाने की तैयारी होनी चाहिये।

बिहारीलाल—हाँ, पर लोग तो अभी आ रहे हैं।

घनश्याम—इतने नाम लिखे हैं और ये तार भी आये हैं।

बिहारीलाल—(तार लेकर) इन सब को मिलाकर एक नोट तैयार करलो। (स्कूल का हेडमास्टर आता है)

हेडमास्टर—बहुत दुःख है सेठ जी मुझे ज़रा इंतज़ाम करते देर लग गई।

बिहारीलाल—मास्टर, तुम्हारा काम मुझे क़तई नापसंद आया। तुम्हें तो सबसे पहले अपने मास्टरों को लेकर आना चाहिये था, ताकि लोगों को मालूम होता कि काफ़ी भीड़ आ गई है! अब देखो अर्थी के साथ सभी लोग जायँ, इसका ध्यान रखना।

हेडमास्टर—(हाथ जोड़कर) जी बहुत अच्छा। सब ठीक होगा।

बिहारीलाल—(अभिमान से) हाँ जाओ। (जाता है)

घनश्याम—(पास जाकर) वे देखिये वे एक कवि आए हैं, क्या

उनका नाम इस लिस्ट में शामिल कर लिया जाय ? बड़े मशहूर कवि भी हैं।

बिहारीलाल—लेकिन वे अफ़सोस कराने तो आए नहीं।

घनश्याम—आए थे लेकिन उस समय बहुत आदमी यहाँ थे। उन्होंने साधारण अफ़सोस कराया था।

राजाराम—ओः कवि भी आये ! सचमुच भाई साहब बहुत बड़े आदमी थे।

बिहारीलाल—कवि मामूली नहीं होते, उनका नाम भी लिखो।

राजाराम—लेकिन वे तो हमारे यहाँ नौकर हैं।

बिहारीलाल—तो जाने दो वे बहुत बड़े आदमी नहीं हो सकते, मामूली आदमी ही तो हैं, जाने दो।

घनश्याम—वे बड़े नाटककार भी हैं।

बिहारीलाल—मैं इतने बड़े आदमियों की लिस्ट में उनका नाम नहीं दे सकता।

घनश्याम—हेडमास्टरों और प्रोफ़ेसरों का ?

बिहारीलाल—(सोचकर) वह भी कोई बड़े आदमी नहीं हैं हमारे नौकर ही तो हैं। फिर भी इन सब का नाम दे देने में कोई हर्ज नहीं है। अच्छा कविजी का भी दो।

घनश्याम—बहुत अच्छा ! (एक महंत और उसके चेलों का प्रवेश)

महंत—बड़ा दुख भवा। जो है सो है के बीच में रायबहादुर साहब की मृत्यु के संबंध में सुनकर क्या कहा जाय साहब। रायबहादुर साहब तो एकनिष्ठ धम्मऔतार थे।

हम तो अपनी कथा में कभी-कभी उनके गुणानुवाद गाते रहते हैं। उन्हें एक गोसाला खुलवाई, धर्मसाला बनवाई, मंदिर बनाए। बड़े धर्मात्मा थे। बहुत समय हो चला अब अर्थी कब उठेगी ?

राजाराम—(हाथ जोड़कर) अभी।

बिहारीलाल—अच्छा तो चलो।

सब—हाँ। (चलने की तैयारी में खड़े हो जाते हैं नेपथ्य में आवाज़ आती है राम-नाम सत्य है)

(पर्दा गिरता है।)

—***—
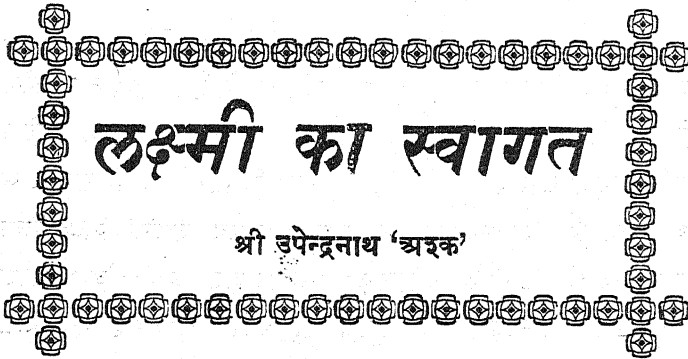
लक्ष्मी का स्वागत

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

[श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' इधर कुछ दिनों से हिन्दी में भी कथा-कहानी लिखने लगे हैं। ये पहले-पहल उर्दू के क्षेत्र में अवतरित हुए और उसमें विशेष ख्याति प्राप्त की। इनका 'अश्क' नाम ही बतला रहा है कि ये उर्दू के लेखक थे। इन्हीं की भाँति प्रेमचन्द्र, सुदर्शन आदि कई प्रख्यात कहानीकार उर्दू से हिन्दी की ओर आये हैं। इन्होंने कहानियाँ ही नहीं लिखी हैं, कविता भी की है। नाटक और उपन्यास भी रचे हैं और साथ ही साथ ज़माने के रुख़ पर एकांकी नाटकों के निर्माण में भी योग दिया है। इनका 'लक्ष्मी का स्वागत' नामक एकांकी नाटक केवल नाट्यतत्त्व की दृष्टि से ही उत्कृष्ट नहीं माना जाता प्रत्युत अभिनयतत्त्व की दृष्टि से भी सफल समझा जाता है, क्योंकि यह कई बार खेला भी जा चुका है। इनकी रचना में नाट्य के नए विधान की योजना परिपूर्ण रूप से दिखाई देती है और समाज की समस्याओं पर इनकी विशेष दृष्टि रहती है। भाषा प्रवाहपूर्ण होती है।]

लक्ष्मी का स्वागत

पात्र—
रौशन : एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र : उसका मित्र
भाषी : उसका छोटा भाई
पिता : रौशन का बाप
मा : रौशन की माता
अरुण : रौशन का बीमार बच्चा

स्थान—जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान ।

समय—नौ-दस बजे सुबह ।

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है । मेज़ पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं । दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है, बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है ।

दाईं दीवार में एक दरवाज़ा है जो कमरे में खुलता है; जहाँ इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज़ का एक पुराना फानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की में से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है। हवा की साँय-साँय और मेंह के थपेड़े सुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है—और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दाईं ओर के कमरे में रौशनलाल दाखिल होता है।]

सुरेन्द्र—नहीं।

रौशन—वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र—मूसलधार! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ।

रौशन—शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र—हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन—भाषी पहुँच गया होगा?

सुरेन्द्र—हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले! बाज़ारों में घुटनों तक से कम पानी न होगा।

रौशन—लेकिन अब तक उन्हें आ जाना चाहिए था। (स्वयं बढ़कर, खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है) अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—(चुप)

रौशन—उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर ताक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म है। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र?

सुरेन्द्र—हौसला करो! अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की साँय-साँय]

रौशन—नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है]

रौशन—सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फ़ानूस को देख रहा है।]

सुरेन्द्र—यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है, कहीं अपनी मा की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जायगा? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है!

[हवा की साँय-साँय और मेह के थपेड़े]

यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाज़...

[बिजली ज़ोर से कड़क उठती है। दरवाज़ा ज़रा-सा खुलता है। मा झाँकती है।]

मा—रौशी, दरवाज़ा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

[दरवाज़ा बन्द करके चली आती है।]

रौशन—सुरेन्द्र...

[सुरेन्द्र तेज़ी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर—क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।]

रौशन—आपको भाषी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस में तकलीफ़ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है।

डाक्टर—चलो, चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज़ आती है। मा तेज़ी से प्रवेश करती है।]

मा—भाषी ! भाषी !

[बीमार के कमरे से भाषी आता है।]

मा—देखो भाषी, बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख़याल है, वही लोग आये हैं। मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने···

भाषी—वही कौन ?

मा—वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे ! बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा, मैं भी···

[ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज आती है। भाषी भागकर जाता है, मा खिड़की में जा खड़ी होती है।

बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है।

सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—भाषी कहाँ है ?

मा—बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेजी से वापस चला जाता है।]

[मा एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में घूमती है। भाषी दाख़िल होता है।]

मा—कौन है ?

भाषी—शायद वही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

मा—क्यों?

भाषी—उनके साथ एक स्त्री भी है।

[मा जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज़ देता है—]

सुरेन्द्र—भाषी!

भाषी—हाँ!

सुरेन्द्र—इधर आओ।

[भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए ख़ामोशी। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फ़ानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।]

रौशन—डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाज़ुक है।

रौशन—बहुत नाज़ुक है?

डाक्टर—हाँ!

रौशन—कुछ नहीं हो सकता?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकिन आपने बहुत देर कर दी है। खन्नाक* (Diphtheria) में तत्काल

---

* Diphtheria—गले का संक्रामक रोग जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार में हैं—उन्होंने गले में आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फ़ीवर-मिक्सचर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से भी खराब हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झड़ी लग गई।

[ज़रा काँपता है]

ओले, आँधी और तूफ़ान! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नज़रों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर ज़ोर-ज़ोर से हिलते फ़ानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—[सिर उठाता है] मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और

मेरा ख़याल ठीक निकला। भाभी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्ख़ा लिख देता हूँ, यहीं बाज़ार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक़ में दवा की दो-चार बूँदें टपकाते रहना और एक घण्टे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। इंजेक्शन के सिवा डिपथीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन—डाक्टर साहब···[आवाज भर आती है।]

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद······

रौशन – मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूँगा, सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना; देखो जाना नहीं, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं, सुरेन्द्र!

सुरेन्द्र—तुम क्या कह रहे हो रौशन? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं? मूल से व्याज प्यारा होता है?

डाक्टर—क्या कह रहे हो रौशनलाल?

रौशन—आप नहीं जानते डाक्टर साहब! यह सब लोग हृदय-हीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र—यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई !

रौशन—दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफ़रत करता हूँ ! क्या ये लोग नहीं समझते कि यह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड़ में पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौड़ते हैं ! स्मृति-मात्र से मेरा ख़ून उबलने लगता है !

डाक्टर—(चौंक कर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूँ। (भाषी से) भाषो, चलो।

[डाक्टर साहब और भाषी का प्रस्थान]

रौशन—सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा ? मैं तो इसका मुँह देखकर सन्तोष किये हुए था। उस जैसी सूरत, उसी जैसी भोली-भाली आँखें, उसी जैसे मुस्कराते ओंठ, उसी जैसा सीधा सरल स्वभाव ! मैं इसे देखकर सरला का ग़म भूल चुका था, लेकिन अब···अब···

[हाथों से चेहरा छिपा लेता है।]

सुरेन्द्र—(उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे !

रौशन—(भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास न रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी !

उसका काम सताए हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुःख दिया जो हम पर ये बिजलियाँ गिराई गईं, हमें इतना दुःख दिया गया !

सुरेन्द्र—दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया।

[उसे दरवाज़े के अन्दर ढकेलकर मुड़ता है। दाईं ओर से दरवाज़े से मा दाखिल होती है।]

मा—किधर चले ?

सुरेन्द्र—ज़रा भाषी को देखने जा रहा था।

मा—क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र—उसकी हालत ख़राब हो रही है।

मा—हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी, अच्छी भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही था, दो-दो वर्ष भी रहता है; पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना। डाक्टरों को आज-कल दिक़ के बिना कुछ सूझता ही नहीं। ज़रा बुखार पुराना हुआ, जरा खाँसी आई कि दिक़ का फतवा दे देते हैं। 'मुझे दिक़ हो गया है'—यह सुनकर मरीज़ की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आख़िर मैंने भी तो पाँच

बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—डिपथीरिया !

माँ—वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र—बड़ी ख़तरनाक बीमारी है माजी ! अच्छा-भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर ख़त्म हो जाता है !

माँ—(काँपकर) राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे ज़रा ज्वर हो गया, छाती जम गई, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ?

[चलने को उद्यत होता है।]

माँ—सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है।]

माँ—मैं तुमसे बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र—कहिए।

माँ—आज वह फिर आये हैं।

सुरेन्द्र—वे कौन ?

माँ—सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रोशी के लिए अपनी लड़की का

शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र—माजी...

माँ—तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-दहान का यह क़ायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफ़ा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया। और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होनेवाला है।

सुरेन्द्र—माजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

माँ—यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिखकर मा-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर ऐसा कौन क्वाँरा है...

सुरेन्द्र—तुम्हारा रौशन बिन-ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यक़ीन दिलाता हूँ।

माँ—यही ठीक है, पर अब शरीफ़ आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है; और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े भले हैं।

लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीक़े-वाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे अच्छी न होगी?

सुरेन्द्र—माजी, अरुण की तबीयत बहुत ख़राब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ—बेटा, ये भी इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफान में कैसे उन्हें निराश लौटा दूँ?

सुरेन्द्र—तो आख़िर आप मुझसे क्या चाहती हैं?

माँ—तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, तब तक मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र—मुझसे यह नहीं हो सकता माजी, बच्चे की हालत ठीक नहीं; बल्कि शोचनीय है। और आप जानती हैं वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे में केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखों में बिठाये रखता है, स्वयं उसका मुँह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वयं कपड़े पहनाता है और इस वक्त़ जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ?

[बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है। रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी सी।]

रौशन—सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले

जाओ, देखो भाषी आया क्यों नहीं ? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है !

[सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता और फिर तेज़ी से निकल जाता है। माँ रौशन के समीप जाती है।]

माँ—क्या बात है, घबराये क्यों हो ?

रौशन—माँ, उसे डिपथीरिया हो गया है।

माँ—सुरेन्द्र ने बताया है (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर···

रौशन—क्या कह रही हो ? तुम्हें अगर स्वयं कुछ मालूम नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ—चलो, मैं चलकर देखती हूँ। [बढ़ती है।]

रौशन—(रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ़ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-बुट्टी की बात करोगी। तुम यहीं रहो, मैं उसे बचाने की अन्तिम कोशिश करूँगा।

[जाना चाहता है]

माँ—सुनो !

[रौशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है।]

रौशन—कहो !

माँ—(चुप)

रौशन—जल्दी-जल्दी कहो, मुझे जाना है।

माँ—वे फिर आये हैं।

रौशन—वे कौन ?

माँ—वही सियालकोटवाले !

रौशन—(क्रोध से) उनसे कहो, जिस तरह आये हैं, वैसे ही चले जाँय । [जाना चाहता है ।]

माँ—रौशी !

रौशन—मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप ! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखती ? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है ! आखिर तुम लोगों को हो क्या गया है ? वह अभी मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी ; वह मर गई, मैं अभी रो भी न पाया कि तुम शगुन लेने पर ज़ोर देने लगीं । क्या वह मेरी पत्नी न थी ? क्या वह कोई फालतू चीज़ थी ?

माँ—शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे फ़ायदे की बात करते है, रामप्रताप...

रौशन—[चीखकर] तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो । अनपढ़, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का मादा कहाँ है ? वह जानवर है !

माँ—तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था...

रौशन वे···माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?

[तेज़ी से मुड़कर कमरे में चला जाता है और दरवाज़ा बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए खँखारते-खँखारते रौशन के पिता का प्रवेश।]

पिता—क्या कहता है रौशन ?

माँ—वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत ख़राब है।

पिता—(खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या ख़राब हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाज़ी है।

[ज़ोर से आवाज़ देता है—]

—रौशी, रौशी !

[खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़]

[फिर आवाज़ देता है।]

—रौशी, रौशी !

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है; आँखें रुँआसी-सी और निगाहों में करुणा।]

रौशन—(अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें, आप क्या शोर मचा रहे हैं ?

पिता—इधर आओ !

रौशन—मेरे पास समय नहीं !

पिता—(चीखकर) समय नहीं ?

रौशन—धीरे बोलिए आप !